अध्याय 1

मिर्च की वैज्ञानिक खेती

डा० एस० पी० सिंह
उद्यान विभाग, तिरहुत महाविद्यालय, ढोली, मुजफ्फरपुर

बिहार में मिर्च की खेती मुख्यत: नगदी फसल के रूप में की जाती है। इसकी खेती से लगभग 87 से 90 हजार रुपया प्रति हेक्टेयर आमदनी होती है।

वर्गीकरण एवं किस्में : मिर्च की उगायी जानेवाली किस्मों को विभिन्नताओं के आधार पर पाँच प्रमुख प्रजातियों में रखा जा सकता है—1. कैप्सीकम एनुअम, 2. कैप्सीकम फूटेमेन्स, 3. कैप्सीकम पेण्डुलम, 4. कैप्सीकम प्यूबेसेन्स, 5. कैप्सीकम चाइनीज।

मुख्य किस्में :

पूसा ज्वाला : इसके फल लम्बे एवं तीखे तथा फसल शीघ्र तैयार होनेवाली है। प्रति हैक्टर 15 से 20 क्विंटल मिर्च (सूखी) प्राप्त होती है। **कल्याणपुर चमन**—यह संकर किस्म है। इसकी फलियाँ लाल लम्बी और तीखी होती हैं। इसकी पैदवार एक हैक्टेयर में 25 से 30 क्विंटल (सूखी) होती है। **कल्याणपुर चमत्कार**—यह संकर किस्म है। इसके फल लाल और तीखे होते हैं। **कल्याणपुर–1**—यह किस्म 215 दिन में तैयार हो जाती है तथा 19 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती है। **कल्याणपुर–2**—यह किस्म 210 दिन में तैयार होती है तथा इसकी उपज क्षमता प्रति हैक्टयर 15 क्विंटल है। **सिन्दूर**—यह किस्म 180 दिन में तैयार होती है तथा इसकी उपज क्षमता प्रति हेक्टर 13.50 क्विंटल है। **आंध्र ज्योति :** यह किस्म पूरे भारत में उगाई जाती हे। इस किस्म की उपज क्षमता प्रति हैक्टेयर 18 क्विंटल है। **भाग्य लक्ष्मी :** यह किस्म सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में उगायी जाती है। असिंचित क्षेत्र में 10-15 क्विंटल एवं सिंचित क्षेत्र में 18 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती हे। **जे–218**—यह संकर किस्म है। इसकी उपज 15 क्विंटल/हे० (शुष्क फल) प्राप्त होती है। **पंजाब लाल**—यह एक बहुवर्षीय किस्म है। यह मोजैक वायरस, कुकर्विट मोजैक वायरस के लिए प्रतिरोधी है। इसकी उपज क्षमता 47 क्विंटल/हे० है। पूसा सदाबहार—यह एक बारह-मासी किस्म है जिनमें एक गुच्छे में 6-22 फल लगते हैं। इसमें साल में 2 से 3 फलन होता है। उपज 150 से 200 दिन में तैयार होती है। उपज 35 क्विंटल/हे०।

अन्य मुख्य किस्में : सूर्य रेख, जवाहर मिर्च–218, एन०पी०–46, ए०एम०डी०यू०–1, पंत सी०–1, पंत सी०–2, जे०सी०ए०–154 (अचार के लिए) किरण एवं अपर्णा।

जलवायु : अच्छी वृद्धि तथा उपज के लिए उष्णीय और उप-उष्णीय जलवायु की आवश्यकता होती है। अधिकांश किस्मों के लिए 7° से० तापमान अनुकूल होता है। प्रतिकूल तापमान तथा जल की कमी से कलियाँ, पुष्प एवं फल गिर जाते हैं।

भूमि : अच्छी जल निकास वाली जीवांश युक्त दोमट भूमि सर्वोत्तम रहती है। असिंचित क्षेत्रों की काली मिट्टियाँ भी काफी उपज देती है। 3-4 बार जुताई करके खेत की तैयारी करें।

बुआई : बीजों को पहले नर्सरी में बोते हैं। शीतकालीन मौसम के लिये जून–जुलाई एवं ग्रीष्म मौसम के लिए दिसम्बर एवं जनवरी में नर्सरी में बीज की बुआई करते हैं। नर्सरी की क्यारियों की तैयारी करके बीज को एक इंच की दूरी पर पंक्तियों में बोकर मिट्टी और खाद से ढंक देते हैं। फिर पूरी क्यारियों को खरपतवार से ढँक देना चाहिए। बीज को जमने के तुरंत बाद सायंकाल में खरपतवार को हटा देते हैं। बीज को एग्रोसन जी०एन० या थीरम या कैप्टान 2 ग्राम रसायन (दवा) प्रति किलोग्राम बीज की दर एसे उपचारित कर के बुआई करना चाहिए।

बीज की मात्रा : एक हेक्टर मिर्च के खेती के लिए 1.25 से 1.50 किग्रा० बीज की आवश्यकता होती है।

रोपाई : पौधे 25 से 35 दिन बाद रोपने योग्य हो जाते हैं। 60 सेमी० × 45 सेमी० एवं 45 × 30 सेमी० की दूरी पर क्रमशः शीतकालीन एवं ग्रीष्मकालीन मौसम में रोपना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : 250-300 क्विंटल/हे० गोबर या कम्पोस्ट, 100-110 किग्रा० नाइट्रोजन, 50 किग्रा० फास्फोरस एवं 60 किग्रा०/हे० पोटाश की आवश्यकता होती है। कम्पोस्ट, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की आधी मात्रा रोपाई के पहले खेत की तैयारी के समय तथा शेष नाइट्रोजन को दो बार में क्रमशः रोपाई के 40-50 एवं 80-120 दिन बाद देनी चाहिए।

सिंचाई एवं अन्य क्रियायें : शीतकालीन मौसम के मिर्च के खेती में सिंचाई की आवश्यकता बहुत कम होती है। सिंचाई की आवश्यकता पड़ने पर दो–तीन सिंचाई दिसम्बर से फरवरी तक करनी पड़ती है। ग्रीष्म कालीन मौसम की खेती में 10 से 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। मिर्च की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए।

कटाई : शाक या सलाद के लिए प्रयोग की जानेवाली मिर्च को हरी अवस्था में ही पूर्ण विकसित हो जाने पर तोड़ लेते हैं। शुष्क मसालों के रूप में प्रयोग की जानेवाली मिर्चों को पूर्णतः परिपक्व हो जाने पर तोड़ते हैं।

उपज : असिंचित फसल (सूखी मिर्च) : 5 से 10 क्विंटल/हे० तथा सिंचित क्षेत्र की फसल से (सूखी मिर्च) : 15 से 25 क्विंटल/हे० औसतन उपज प्राप्त होती है। हरी मिर्च की औसत उपज : 60 से 150 क्विंटल/हेक्टयर।

❑

बिहार में मसाले की खेती के अंतर्गत क्षेत्र

क्रम सं०	फसल	क्षेत्रफल (हे०)	उत्पादन (टन)	उत्पादकता (ट०/हे०)
1.	हल्दी	4523	23592	5.21
2.	लहसुन	3586	24102	6.72
3.	धनिया	1087	928	0.85
4.	अदरख	1153	7319	6.34
5.	ईमली	180	792	4.40
6.	अन्य	277	196	0.71
7.	कुल	10806	56929	5.27

अध्याय **2**

लहसुन की वैज्ञानिक खेती

प्रो० एस० पी० सिन्हा
वैज्ञानिक, कृषि महाविद्यालय पूर्णियाँ

लहसुन एक बहुत ही उपयोगी मसाला फसल है। इसकी पत्तियों की चटनी पकौड़ा, कोफ्ता, सलाद आदि बनाने में उपयोग किया जाता है। इसके जड़ों का उपयोग विभिन्न शाकाहारी तथा मांसाहारी व्यंजनों के बनाने में होता है। मसाले और अचार के रूप में इसका ज्यादा प्रयोग किया जाता है। पोषण की दृष्टि से लहसुन काफी धनी होता है। यह कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन और फास्फोरस का मुख्य स्रोत है तथा इसमें एस्कार्बिक अम्ल(विटामिन सी) बहुत अधिक मात्रा में पाई जाती है।

लहसुन पाचन क्रिया को ठीक करके भोजन पचाने में सहायक होता है। एक अध्ययन के अनुसार लहसुन रक्त में कॉलेस्ट्रॉल को कम करता है। इसके सेवन से रक्त में शर्करा की मात्रा में कमी आती है। परंतु अधिक सेवन करने से खून की कमी हो जाती है।

fdLek dk puko ‰ राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान नासिक द्वारा लहसुन की विकसित की गई पांच किस्मों का चयन किया जा सकता है।

,xhQkm.M lQn ‰ इस किस्म के कंद बड़े (3.5–40 से.मी. व्यास) आकार के होते हैं। कंद ठोस त्वचा चांदी की तरह सफेद, गूदा क्रीम के रंग का एवं जवे बड़े होते हैं। एक कंद में (पोटी) 20–25 जड़े होते हैं।

;euk lQn ‰ इस किस्म के लहसुन के कंद ठोस त्वचा सफेद, एवं गूदा क्रीम रंग का होता है। कंद का आकार बड़ा (4.0–4.5 से.मी. व्यास) एवं प्रत्येक कंद में 20–25 जवे होते हैं।

;euk lQn&2 ‰ इनका शल्क कंद ठोस, त्वचा सफेद एवं गूदा क्रीम रंग का होता है। यह बुआई के 165–170 दिनों बाद तैयार हो जाती है। इस पर बैंगनी धब्बा रोग या झुलसा रोग का प्रकोप कम होता है।

th0282 ¼;euk lQn&3½ इसके शल्क कंद बड़े आकार के (व्यास 5.87 से.मी.) सफेद रंग के एवं ठोस होते हैं। जड़े 1.04–1.05 से.मी. मोटे होते हैं और प्रत्येक जवे का वजन 2.5–2.8 ग्राम होता है। एक कंद में 15–18 जवे पाये जाते हैं। यह किस्म लगाने के 140–150 दिनों बाद तैयार हो जाती है।

,xhQkm.M ikorh ‰ यह पर्वतीय क्षेत्रों के लिए ज्यादा उपयुक्त है। यह शल्क कंद बड़े, हल्का सफेद, बैंगनी रंग मिश्रित तथा 10–12 जवे वाले होते हैं। शल्क कंद का व्यास 5–7 से.मी. होता है। जवे क्रीम रंग के होते हैं और प्रत्येक जवे का वजन 4.5–5 ग्राम होता है। इसके अलावे यमुना सफेद–4 (जी.323), जी. 1, एवं एग्रीफाउण्ड सफेद (जी.41) उन्नत प्रभेद है।

[kr dk puko ‰ अच्छी जीवांश युक्त, अच्छी जल निकास वाली या अम्लीय–क्षारीय (उदासीन) दोमट मिट्टी सबसे उपयुक्त होती है। वैसे लहसुन की खेती प्रायः सभी प्रकार की मिट्टियों में हो जाती है।

[kr dh r;kjh ‰ 200–250 क्विंटल कम्पोस्ट या 40–50 क्विंटल वर्मी कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर

की दर से बुआई से पूर्व खेत में अच्छी तरह बिखेर कर जुताई कर मिला देते हैं। यह काम बुआई के 20–25 दिन पूर्व करते हैं। तीन–चार जुताई कर एवं हरेक जुताई के बाद पाटा चलाकर खेत की मिट्टी को हल्की एवं भुरभुरी बना ली जाती है।

c|vkb| dk le; % लहसुन के बुआई का समय अक्टूबर से नवम्बर माह तक किया जाता है। बीज दर–300–500 किलोग्राम जवा प्रति हेक्टेयर की दर से लगाते हैं

ch tkipkj % बुआई के 24 घंटे पूर्व जवों को थीरम 2.5 ग्राम या वैविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम जवा बीज दर से उपचारित कर देने से बीज रोग रहित हो जाता है। (उपचारित बीजों को भोजन में व्यवहार नहीं करें)

c|vkb| njh % कतार से कतार 15 से.मी. एवं पौधों से पौधों की दूरी 10 से.मी. रखनी चाहिए।

mo|jd i|cèku % 120 किलोग्राम नत्रजन, 80 किलोग्राम स्फुर एवं नत्रजन की आधी मात्रा, स्फुर एवं पोटाश की पूरी मात्रा आधारीय रूप से खेत की तैयारी के समय डाल देते हैं। शेष नत्रजन के 35 दिनों बाद एवं आधा 65 दिनों बाद उपरिवेशन के रूप में डाल देते हैं। यदि गंधक रहित उर्वरक का उपयोग किया गया हो तो 30–40 किलोग्राम गंधक उर्वरक प्रति हेक्टेयर की दर से आधारीय रूप मे अवश्य डालनी चाहिए। यदि क्यारियों में जिंक की कमी हो तब 25 किलों जिंक सल्फेट या 16 किलो मोनो जिंक प्रति हेक्टेयर की दर से खेत की तैयारी के समय अवश्य डाल देनी चाहिए। खड़ी फसल में यदि सुक्ष्म पोषक तत्वों के कमी के लक्षण दिखे तब मल्टीप्लेक्स सुक्ष्म पोषक तत्व का 1.5–2.0 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 40–50 दिनों बाद (बुआई के) 600–800 लीटर पानी में घोलकर अवश्य छिड़काव कर दें।

fudkb|&x|Mkb| % खेत को खरपतवार से मुक्त रखे इसके लिए आवश्यकतानुसार दो निकाई–गुड़ाई क्रमशः 20–25 एवं 50–75 दिनों बाद करें, इससे फसल की बढ़वार अच्छी होगी। यदि खेत में खरपतवार का प्रकोप ज्यादा हो तब बुआई के आठ दिन पूर्व परती खेत में अच्छी नमी की दशा में 2.5 लीटर से 3.5 लीटर ग्लाईफोसेट नामक खरपतवार नाशी का 600–800 लीटर पानी में घोलकर करें। खड़ी फसल में खरपतवार का प्रकोप तरगासुपर नामक तश्णनाशी का बुआई के 15–20 दिनों बाद 2–2.5 मिली लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। इससे तृण नियंत्रण में मदद मिलेगा।

सिंचाईः– पहली सिंचाई–बुआई के तुरंत बाद करनी चाहिए। बाद की सिंचाईयां 10–15 दिनों के अंतराल पर हवा के वेग, मिट्टी के प्रकार एवं मौसमानुकूल आवश्यकतानुसार करनी चाहिए। जब पौधों के वृद्धि कारक और जवों के विकास का समय होता है। उस समय क्यारियों में नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। अन्यथा कंदों की बढ़वार रुक जाती है। खुदाई के कुछ दिन पूर्व सिंचाई रोक दी जाती है। जिससे पोटी के जवे अच्छी तरह सूख जाए ताकि भंडारण अच्छी तरह से हो सके।

ikèk l|j{k.k % कीटों में प्रायः थ्रिप्स(चुरदा) का प्रकोप एवं हरा पिल्लू का प्रकोप होने पर पानी में प्रोफेनोफॉस एक मिली लीटर या कार्वोसल्फान दो मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोलकर स्टीकर मिलाकर 15 दिनों के अंतराल पर 2–3 छिड़काव करने से दोनों रोगों कीटों का नियंत्रण हो जाता है।

jkx fu;=.k % रोगों में प्रायः दो बैंगनी धब्बा एवं स्टेमीफिलियम झुलसा का प्रकोप पाया जाता है। इन दोनों रोगों से बचाव हेतु बीज उपचार कार्बेण्डाजीम से अवश्य करनी चाहिए। खड़ी फसल में प्रकोप होने पर क्लोरोथैलोनीम 2 ग्राम अथवा साफ नामक दवा का 1.5 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करनी चाहिए।

dnk dh [k|nkb| ,o| l|[kkuk % क्यारियों में जब पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती है और वे सूखने लगे जब क्यारियों का पटवन बंद कर देनी चाहिए। शीर्ष से 2–2.5 से.मी. भाग छोड़कर पत्तियां या डंठल को कंद रखते हैं। फर्श पर नमी नहीं रहनी चाहिए। सुखाये गये लहसुन कंदों की छटाई करके हवादार स्थान में रखना चाहिए।

❑

अध्याय 3

अदरक की वैज्ञानिक खेती

अदरक प्रमुख मसालों में एक है इसकी खेती नगदी फसल के रूप में की जाती हैं। अदरक का वानस्पतिक नाम 'जीन्जीबर ओफीसीनेली' है। अदरक के भूमिगत रूपांतरित तना अर्थात प्रकंद का उपयोग किया जाता हैं। इन प्रकंदो को फसल के खोदाई के बाद हरा तथा सुखाकर दानों ही रूपों में उपयोग करते हैं ताजा अदरक व्यंजनों को खूशबूदार तथा चटपटा बनाने एवं मुरब्बा बनाने के काम आते है। चाय का स्वाद बढ़ाने के लिये विशेष तौर पर सर्दियों में अदरक का उपयोग किया जाता है।

अदरक का उपयोग मसालों के रूप में, सलाद, अचार, मुरब्बा, चटनी आदि के रूप में किया जाता हैं। पकी गांठों को सुखाकर उनसे सोंठ तैयार किया जाता है। जिसका काफी मात्रा विदेशों में निर्यात किया जाता है। सबसे अधिक अदरक का उत्पादन भारत वर्ष में होता है। सभी देशों को मिलाकर जितना अदरक का उत्पादन होता है उसमें भारत वर्ष अकेले 33 प्रतिशत अदरक का उत्पादन करता है।

vk"kfèk;| x|.k % अदरक का प्रयोग सब्जियों को चटपटा बनाने के साथ गुणकारी बनाने में किया जाता हैं। यह घबराहट, थकान, प्यास आदि को शांत करके शरीर में ताजगी और ढंडक भरती है। कफ से ग्रस्ति लोगो के लिये अदरक काफी कारगर औषधि के रूप में उपयोग होता है। अदरक के उपयोग से छाती पर जमा सारा बलगम निकालकर बाहर करती है, अतः खांसी नहीं बनने पाती है। सिरदर्द, कमर के दर्द, पेट दर्द, बेचैनी, घबराहट आदि छोटे–मोटे रोगों के लिये यह रामबाण औषधि है। अदरक को चुसते ही मुंह में लार ग्रन्थि अपना काम शुरू कर देती है। इसमें कंठ की खशखशाहट दूर होती है। स्त्रियों के लिये भी अदरक वरदान है। जिन युवतियों को मासिक धर्म, गर्भाधान, प्रसव के बाद स्तन में दूध न उतरने की शिकायत रहती है, उनके लिये अदरक कीमती दवा से भी बड़ा काम करती है।

t yok;| % अदरक की अच्छी अपज के लिए थोड़ी गर्म तथा नम जलवायु होनी चाहिए। अदरक की अच्छी उपज के लिए 20 से 30 डिग्री से0 तापमान उपयुक्त होता है। इससे ज्यादा होने पर फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कम तापमान के कारण (10^0 से0 से कम) पत्तों तथा प्रकन्दों को नुकसान पहुँचता है। बोआई के अंकुर फूटने तक हल्की नमी, फसल बढ़ते समय मध्यम वर्षा तथा फसल के उखाड़ने के एक माह पहले शुष्क मौसम होना चाहिए।

Hkfe % अदरक की अधिक उपज के लिए हल्की दोमट या बलूई दोमट भूमि उयुक्त होती है। 6. 0 से 7.5 पी0 एच0 मान वाली भूमि में अदरक की अधिक पैदावार होती है। अदरक के खेती के लिए ऊँची जमीन एवं जल निकासी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। भारी एवं क्षारीय भूमि में अदरक का उत्पादन अच्छा नहीं होता है। अदरक उत्पादन के लिए फसल चक्र अपनाना अति आवश्यक है।

Hkfe dh r|;kjh % अदरक की खेती के लिए दो बार पलटने वाली हल से जुताई करने के बाद, चार बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करते हैं। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाना चाहिए। जिससे मिट्टी भूरभूरी हो जाए। अंतिम जुताई से 3 से 4 सप्ताह पूर्व खेत में 250 से 300 क्विंटल सड़ा हुआ गोबर का खाद देते है। गोबर का खाद देने के बाद एक या दो बार खेत की जुताई कर गोबर के खाद को मिट्टी में मिला देते हैं।

cksvkbZ dh fofèk % अदरक की बोआई तीन विधियों के द्वारा की जाती है।

D;kjh fofèk % इस विधि में 1.20 मीटर चौड़ी तथा 3.0 मीटर लम्बी उभारयुक्त क्यारियॉ जो जमीन की सतह से 15–20 से0मी0 उॅची हो। प्रत्येक क्यारी के चारो तरफ 50 से0मी0 चौड़ी नाली बनानी चाहिए। क्यारी में 30–20 से0मी0 दूरी पर 8–10 से0मी0 की गहराई में बीज की बोआई करनी चाहिए। यह विधि जहॉ पानी लगता है वैसे जगह पर इस विधि से बोआई करनी चाहिए।

eM fofèk % इस विधि में 60 से0मी0 की दूरी पर तैयार खेत में 20 से0मी0 दूरी पर बीज की बोआई करने के बाद मिट्टी चढ़ाकर मेड़ बनावें। इस बात का ध्यान होना चाहिये कि बीज 10 से0मी0 गहराई में हो जिससे बीजों का अंकुरण अच्छा हों यह विधि जहॉ पर जल जमाव की संभावना होती है वैसी जगह इस विधि से अदरक की खेती की जाती है।

lery fofèk % यह विधि हल्की एवं ढ़ालू भूमि में अपनाई जाती है। इस विधि में 30 से0मी0 पंक्ति एवं 20 से0मी0 गांठ से गांठ या पौधे की दूरी तथा 8–10 से0मी0 की गहराई में बोआई की जाती है। जहॉ पर जल जमाव की संभावना नहीं होती है वैसे जगह पर इस विधि से खेती करते हैं।

mUur fdLe % बिहार की लिए नदिया, सुप्रभा, सुरूचि, सुरभी जोरहट, रीयो–डी जेनेरियो, मननटोडी एवं मरान उपयुक्त किस्में हैं।

ufn;k % यह किस्म बिहार के लिये उपयुक्त है यह 8 से 9 माह में तैयार हो जाती है इसकी उपज क्षमता 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है।

ejku % यह एक अच्छी किस्म है इसकी उपज क्षमता 175 से 200 क्विंटल प्रति हेक्टर होता है साथ ही इस किस्म में मश्दु विगलन रोग नहीं लगता है।

tkjgV % यह असम की लोकप्रिय किस्म है इसकी उपज क्षमता 200–225 क्विंटल प्रति हेक्टर है यह 8 से 10 माह में तैयार हो जाती है।

lqiHkk % यह किस्म 225 से 230 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म में अधिक किलें (टोलरिंग) निकलते हैं प्रकंद का सिरा मोटा, छीलका सफेद एवं चमकदार होता है। इस किस्म की उपज क्षमता 200–230 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म प्रकन्द विगलन रोग के प्रति सहनशील है।

lq:fp % यह किस्म हल्के सुनहले रंग की होती है एवं 230–240 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्मे की उपज 200–225 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म प्रकन्द विगलन रोग के प्रति निरोधक है।

lqjfHk % इसके गांठ काफी आकर्षक होते हैं। यह 225–235 दिन में तैयार हो जाती है। इसकी उपज क्षमता 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टर है। यह किस्म भी प्रकन्द विगलन बीमारी के प्रति सहनशील है।

[kkn ,oa moZjd %

अदरक लम्बी अवधि के फसल है तथा ज्यादा खाद चाहने वाली होती है। अतः अधिक उपज के लिये गोबर की सड़ी खाद 250–300 क्विंटल /हेक्टर नेत्रजन, फास्फोरस वा पोटाश क्रमशः 80–100, 50–60 एवं 100 किलोग्राम/हेक्टर की दर से खेत में डालें। गोबर खाद रोपाई से 20–30 दिन पहले तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा खेत तैयार करते समय जबकि नेत्रजनित खाद को तीन बराबर भाग में बॉटकर, पहला भाग रोपाई से 40 से 45 दिन बाद या दो से अधिक पत्तियॉ होने के बाद, दूसरा भाग 80 से 90 दिन बाद तथा तीसरा भाग 100 से 120 दिन बाद देना चाहिए। नेत्रजनित उर्वरक का प्रयोग करते समय खेत में भरपूर नमी होनी चाहिए। बिहार में जिंक, बोरान (सुहागा) एवं लोहा की मिट्टी में कमी पायी गई है अतः मिट्टी का परीक्षण कराने पर सूक्षम तत्वों की कमी हो तो मिट्टी में रोपाई के पहले जिंक सल्फेट एवं बोरेक्स का क्रमशः 20–25 एवं 10–12 किलो प्रति हेक्टर दें। लोहा के कमी

की अवस्था में 0.5 से 0.8 प्रतिशत का घोल बनाकर उसमें 25 से 30 बुन्द नींबू का रस डालकर दो छिड़काव करे। पहला छिड़काव रोपाई से 60 दिन के बाद तथा दूसरा रोपाई से 90 दिन के बाद करें।

dUn ¼xkB½ dh cvkbl %

बीज प्रकन्द मध्यम आकार के जिनका भार 20–25 ग्राम तथा 2–3 ऑखो वाली ही, कन्द का चुनाव करना चाहिए। बीज प्रकन्द स्वस्थ, बीमारी वा कीट रहित होनी चाहिये। प्रति हेक्टर 18–20 क्विंटल कन्द की जरूरत होती है। कन्दो को इण्डोफिल एम–45 का 2.5 ग्राम एवं वेभिस्टीन का 1.50 ग्राम प्रति लीटर पानी के मिश्रित घोल में या रीडोमिल के 2 से 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी के दर से घोल बनाकर आधा घंटे तक उपचारित करें। तत्पश्चात छाया में सुखाकर रोपाई करें। जिन इलाकों में सूत्रकृमि का प्रकोप हो वहॉ पर नीम की खल्ली 25 क्विंटल या थिमेट 10 जी0 12 किलोग्राम प्रति हेक्टर की दर से खेत की तैयारी करते समय डालें। रोपाई 30 × 20 से0मी0 की दूरी एवं 8–10 से0मी0 गहराई पर करे। रोपाई का उचित समय 15 से 31 मई है। लेकिन विशेष परिस्थिति में इसकी रोपाई 20 जून तक की जा सकती है।

>iuh % रोपाई के बाद शीशम की हरी पत्ती या अन्य चीजों की मोटी तह बिछाकर ढ़क देना चाहिए। इससे मिट्टी में नमी बनी रहती है तथा कन्दों का अंकुरण सामान्य रूप में होता है तथा तेज धूप से अंकुरण का बचाव होता है। साथ ही खरपतवार कम निकलते हैं एवं उपज भी अधिक प्राप्त होती है।

flpkbl % अदरक बरसात वाली फसल है इसलिए इसकी सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन अक्टूबर–नवम्बर माह में वर्षा नहीं होने की परिस्थिति में सिंचाई करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि अक्टूबर–नवम्बर माह में अदरक का गांठ बनता तथा उसका विकास होता है इसलिए अक्बूबर–नवम्बर माह में खेतों अधिक नमी होनी चाहिए।

Qly&icUèk % रोपाई के दो से तीन माह बाद क्यारियों में निकाई–गुड़ाई कर मिट्टी चढानी चाहिये। अदरक में खरपतवारनाशक दवाईयों का जयादा इस्तेमाल नहीं किया जाता है क्योंकि लम्बे समय की फसल होने के कारण रोपाई से पहले या तुरन्त बाद के छिड़काव से अच्छे परिणाम नहीं मिले हैं।

dUnk dh [knkbl %

अदरक की फसल सामान्यतः 8–9 महीनों में तैयार होती हैं जब पौधे की पत्तियॉ पीले पड़नी शुरू हो जाये तब खुदाई करनी चाहिए। जिन इलाकों में पाला नहीं पड़ता है वहां इसे कुछ दिन बाद भी खुदाई की जा सकती है। खुदाई के बाद इसे 2–3 दिन तक छाया में सुखायें। एक हेक्टर क्षेत्र में औसत 100 से 150 क्विंटल पैदावार होती है। कुछ किसान को अच्छा भाव मिलने पर समय से पहले ही अदरक को उखाड़ लेते हैं ऐसी स्थिति में उखाड़ा गया अदरक ज्यादा दिन तक अच्छी दशा में नहीं रहती हैं। अतः इसे तुरन्त बेच दें या इस्तेमाल कर लेना चाहिए। भण्डारण के लिये रखने वाला अदरक कभी भी समय से पहले नहीं निकालना चाहिए।

Hk.Mkj.k %

ज्यादातर अदरक अगले वर्ष में रोपाई हेतु भण्डारित किये जाते हैं। इसके लिये स्वस्थ्य वा बीमार रहित गांठ को छांट करके इन्डोफिल एम–45 का 2.5 एवं वेभिस्टीन को 1 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से मिश्रित घोल में उपचारित करके 48 घंटे तक छाया में सुखाने के बाद गडढों में रखें। गडढों में गांठ को रखने के बाद पुआल या लकड़ी के तख्तों से ढ़ककर तख्तों को गोबर से लेप दें लेप करते समय छोटी मुॅह हवा निकास के लिए अवश्य रखें। हवा निकास के लिये सुराख वाली पाईप या नाली का भी इस्तेमाल किया जाता है जिसका एक मुॅह गडढों से बाहर होना चाहिए।

❑

अध्याय 4

हल्दी की वैज्ञानिक खेती

डा० एस० पी० सिंह
उद्यान विभाग, तिरहुत महाविद्यालय, ढोली, मुजफ्फरपुर

हल्दी बिहर की प्रमुख मसाला फसल है। क्षेत्रफल एवं उत्पादन में इसका प्रथम स्थान है। हल्दी का उपयेाग हमारे भोजन में नित्यदिन किया जाता है इसका सभी धार्मिक कार्यो में मुख्य स्थान प्राप्त है। हल्दी का काफी औषधीय गुण है इसका उपयोग दवा एवं सौन्दर्य प्रसाधनों में भी होता है। हल्दी के निर्यात से भारत को करोड़ो रूपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

जलवायु

हल्दी की खेती उष्ण और उप-शीतोष्ण जलवायु में की जाती है। फसल के विकास के समय गर्म एवं नम जलवायु उपयुक्त होती है परन्तु गांठ बनने के समय ठंड 25-30 डिग्री से. ग्रेड जलवायु की आवश्यकता होती है।

किस्म

राजेन्द्र सोनिया : इस किस्म के पौधे छोटे यानि 60-80 से.मी. ऊँची तथा 195 से 210 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 400 से 450 क्विंटल प्रति हेक्टर तथा पीलापन 8 से 8.5 प्रतिशत है।

आर.एच. 5 : इसके पौधे भी छोटे यानि 80 से 100 से.मी. ऊँची तथा 210 से 220 दिन में तैयार हो जाती है। इस किस्म की उपज क्षमता 500 से 550 क्विंटल प्रति हेक्टर तथा पीलापन 7.0 प्रतिशत है।

आर0एच0 9/90 : इसके पौधे मध्य ऊँचाई की यानि 110-120 से.मी. ऊँचाई की होती है तथा 210 से 220 दिन में तैयार हो जाती है इस किस्म की उपज क्षमता 500 से 550 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

आर0 एच0 13/90: इसके पौधे मध्यम आकार यानि 110 से 120 से.मी. ऊँचाई की होती है इसके तैयार होने में 200 से 210 दिन का समय लगता है। इस किस्म की उपज क्षमता 450 से 500 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

एन0डी0आर0-18: इसके पौधे मध्यम आकार यानि 115 से 120 से.मी. ऊँची होती है तथा इसको तैयाार होने में 215 से 225 दिन का समय लगता है। इसकी उपज क्षमता 350 से 375 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

भूमि एवं तैयारी

हल्दी की अधिक उपज के लिए जीवांशयुक्त जल निकास वाली बलूई दोमट से हल्की दोमट भूमि उपयुक्त होती है। इसके गांठ जमीन के अन्दर बनते है इसलिए दो बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा तीन से चार बार देशी हल या कल्टीवेटर से जुताई करके एवं पाटा चलाकर मिट्टी को भूरभूरी तथा समतल बना लें।

खाद एवं उर्वरक

एक हेक्टर क्षेत्रफल के लिये निम्नलिखित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का व्यवहार करना लाभदायक होता है।

सड़ा हुआ कम्पोस्ट/गोबर की खाद	:	250 से 300 क्विंटल
नेत्रजन	:	100 से 150 किग्रा.

फास्फोरस (स्फुर)	:	50 से 60 किलोग्रा.
पोटाश	:	100 से 120 किग्रा.
जिंक सल्फेट	:	20 से 25 किलोग्राम

सड़ा हुआ गोबर की खाद या कम्पोस्ट से रोपाई 15 से 20 दिन पहले खेत में छीटकर जोताई करें। फास्फोरस, पोटाश एवं जिंक सल्फेट को बोआई/रोपाई से एक दिन पहले खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिये। नेत्रजन खाद को तीन बराबर भागों में बांट कर पहला भाग रोपाई से 40 से 45 दिन बाद, दूसरा भाग 80 से 90 दिन बाद तथा तीसरा भाग 100 से 120 दिन बाद देना चाहिये।

बोआई/रोपाई का सयम : हल्दी बोआई या रोपाई 15 मई से 30 मई का समय उपयुक्त है लेकिन विशेष परिस्थिति में 10 जून तक इसकी रोपाई की जा सकती है।

रोपाई/बोआई विधि : हल्दी की रोपाई दो प्रकार से की जाती है।

1. समतल विधि 2. मेढ़ विधि

समतल विधि में भूमि को तैयार कर समतल कर लेते है। कुदाल से पंक्ति से पंक्ति 30 से.मी. तथा गांठ से गांठ की दूरी 20 से.मी. पर रोपाई करते है।

मेढ़ विधि में दो तरह से बोआई की जाती है 1. एकल पंक्ति विधि तथा 2. दो पंक्ति विधि। एकल पंक्ति विधि में 30 से.मी. के मेड़ पर बीच में 20 से.मी. की दूरी पर गांठ को रख देते है तथा 40 से.मी. मिट्टी चढ़ा देते है जबकि दो पंक्ति विधि में 50 से.मी. मेढ पर दो लाईन, जो पंक्ति से पंक्ति 30 से.मी. तथा गांठ से गांठ 20 से.मी. की दूरी पर रखकर 60 से.मी. कुढ़ से मिट्टी उठाकर चढ़ा देते है।

बोआई की दूरी तथा बीज की मात्रा

हल्दी के बोआई के लिये 30-35 ग्राम के गांठ उपयुक्त होती है। गांठ को पंक्ति से पंक्ति 30 से.मी. तथा कन्द से कन्द की दूरी 20 से. मी. एवं 5-6 से.मी. गहराई पर रोपाई या बोआई करनी चाहिये। कन्द को रोपने के पहले इन्डोफिल एम-45 का 2.5 ग्राम वेभिस्टीन का 1.0 ग्राम के हिसाब से प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर कन्द को 30-45 मिनट तक उपचारित करके लगाना चाहिये।

झपनी : रोपाई या बोआई के बाद खेतों को हरी शीशम की पत्तियों से (5 से.मी. मोटी परत) ढ़ंक दें इससे खरपतवार नियंत्रण एवं गांठो का जमाव समान्य रूप से होता है।

निकाई-गुड़ाई : हल्दी में तीन निकाई-गुड़ाई करें। पहला निकाई 35-40 दिन बाद, द्वितीय 60 से 70 दिन बाद तथा तीसरा 90 से 100 दिनों बाद करें। प्रत्येक निकाई गुड़ाई के समय पौधों की जड़ों के चारो तरफ मिट्टी अवश्य चढ़ावें।

सिंचाई : हल्दी की पैदावार बरसात में होता है इसलिये इस फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। जबकि समय पर नहीं होने वर्षा के परिस्थिति में, आवश्यकतानुसार सिंचाई अवश्य करनी चाहिये।

खोदाई : हल्दी की खोदाई दो प्रयोजन से किया जाता है 1. उबालने यानि सोंठ बनाने तथा 2. बीज के लिये। सोंठ के लिये हल्दी की खोदाई जब पौधे पीले पड़ने लगे तब खोदाई कर सकते है। जबकि बीज के लिये पौधे पूर्ण रूप से सुख जाते है तब खोदाई करते है।

उपज : हल्दी की उपज किस्म एवं उत्पादन के तौर तरीकों पर निर्भर करता है। हल्दी की औसत उपज 250 से 300 क्विंटल प्रति हेक्टर है।

पौधा संरक्षण

कीट

थ्रीप्स : छोटे लाल, काला एवं उजले रंग कीड़े पत्तियों के रस चुसते है एवं पत्तियों को मोड़कर पाईपनुमा

बना देते है। इससे बचाव के लिए डाईमिथियोट का 1.5 मि.ली. या कार्बाराईन का 1.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिन के अन्तराल पर तीन छीड़काव करें।

रोग

प्रकन्द विगलन रोग : पत्तियाँ पीली पड़कर सुखने लगती है तथा जमीन के उपर का तना गल जाता है भूमि के भीतर का प्रकन्द भी सड़कर गोबर की खाद की तरह हो जाता हैं। यह बीमारी जल जमाव वाले क्षेत्रों में अधिक लगते है। इस रोग से बचाव के लिए इण्डोफिल एम-45 का 2.5 ग्राम एवं वेभिस्टीन का 1 ग्राम मिश्रण बनाकर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर बीज उपचारित कर लगावें और खड़ी फसल पर 15 दिन के अन्तराल पर दो से तीन छीड़काव करे तथा रोग की अधिकता में पौधों के साथ-साथ जड़ की सिंचाई (ड्रेन्विंग) करें।

पर्ण धब्बा रोग : पत्तियों के बीच में या किनारे पर बड़े बड़े धब्बे बन जाते है जिससे फसल की वृद्धि रूक जाती है।

पर्ण चित्ती रोग : इस बीमारी के प्रकोप होने पर पत्तियों पर बहुत छोटी-छोटी चित्तियाँ बन जाती है। बाद में पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है और सूख जाती है। पर्ण धब्बा रोग एवं चित्ती रोग से बचाव के लिये 15 दिन के अन्तराल दो से तीन छीड़काव इन्डोफिल एम-45 का 2.5 ग्राम एवं वेभिस्टीन का 1 ग्राम का मिश्रण बनाकर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छीड़काव करें।

❑

राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विकसित मसाला एवं कन्दमूल फसलों की उन्नत किस्में

क्र.सं.	फसल	विकसित किस्म का नाम (उपज क्षमता) क्विंटल/हे.)
1.	**मसाला**	
	(क) हल्दी	राजेन्द्र सोनिया-10 (450-500)
	(ख) मेथी	राजेन्द्र क्रान्ति-16 (12-13)
	(ग) धनियाँ	राजेन्द्र स्वाती (15-18)
	(घ) मिर्च	85-2 (45-47)
2.	**कन्दमूल फसलें**	
	(क) आलू	राजेन्द्र आलू-1 (250-300), राजेन्द्र आलू-2 (220-250), राजेन्द्र आलू-3 (200-250)
	(ख) मिश्रीकन्द	राजेन्द्र मिश्रीकन्द-1 (250-300)
	(ग) शकरकन्द	राजेन्द्र शकरकन्द-5 (200-250), राजेन्द्र शकरकन्द-35 (250-300), राजेन्द्र शकरकन्द-43 (200-250), राजेन्द्र शकरकन्द-47 (300-350), राजेन्द्र शकरकन्द-92 (170-280)
	(घ) ओल	गजेन्द्र (400-500)
	(ङ) अरबी	सफेद गौरिया (200-250)

अध्याय 5

घृतकुमारी की वैज्ञानिक खेती

घृतकुमारी जिसे ग्वारपाठा या अंग्रेजी भाषा में एलोवेरा कहते हैं, एक औषधीय पौधा है। यह साल भर हरा-भरा रहने वाला पौधा है। घृतकुमारी की उत्पत्ति दक्षिणी यूरोप एशिया या अफ्रीका के सूखे क्षेत्रों में मानी जाती है । भारत में घृतकुमारी का व्यवसायिक उत्पादन सौन्दर्य प्रसाधन के साथ दवा निर्माण के लिए किया जाता है। घृतकुमारी की पत्ती ही व्यावसायिक इस्तेमाल में आती है। वर्तमान समय में इसका इस्तेमाल औषधीय निर्माण, सौन्दर्य प्रसाधन, सब्जी और अॅचार के लिए किया जाता है।

जलवायु : घृतकुमारी की व्यावसायिक खेती शुष्क क्षेत्रों से लेकर सिंचित मैदानी क्षेत्रों में की जा सकती है । परन्तु आज यह देश के सभी भागों में उगाया जा रहा है । राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में इसका व्यावसायिक स्तर पर उत्पादन किया जा रहा है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसे बहुत ही कम पानी तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्र में भी आसानी से उगाया जा सकता है । घृतकुमारी फसल के विकास के लिए सबसे उपयुक्त तापमान 20-22^0 सें० होता है परन्तु यह पौधा किसी भी तापमान पर अपने को बचाये रख सकता है।

मिट्टी : घृतकुमारी फसल बलुई मिट्टी, बलुई दोमट तथा पहाड़ी मिट्टी से लेकर किसी भी प्रकार की मिट्टी में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है । यह पाया गया है कि हल्की काली उपजाऊ मिट्टी में इसका विकास अधिक होता है । अत: इसका व्यावसायिक उत्पादन काली मिट्टी वाले क्षेत्र में ज्यादा हो रहा है । अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी0एच0 मान 8.5 तक हो इसके लिए उपयुक्त पायी गयी है।

खेत की तैयारी : घृतकुमारी के पौधे 20-30 सें.मी. की गहराई तक ही अपनी जड़ों का विकास करते हैं । अत: खेत की सतही जुताई ही फायदेमंद है । जलवायु और मिट्टी की दशा को ध्यान में रखते हुए एक-से-दो जुताई करके पाटा चला देना चाहिए । खेतों को 15 मी0 x 3 मी0 के आकार में बाँटकर अलग-अलग क्यारी बनाना चाहिए ताकि जल उपलब्धता के आधार पर इसकी सिंचाई की जा सके ।

रोपाई का समय : इसकी रोपाई का सबसे उपयुक्त समय जुलाई-अगस्त है। इस मौसम में रोपाई करने से पौधे पूरी तरह जीवित रहते हैं और उनका विकास तेजी से होता है। सिंचाई की सुविधा वाले क्षेत्रों में हम सालों भर इसकी रोपाई कर सकते हैं । इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अगर जाड़े में कड़ाके की ठंढ पड़ रही हो तब इसकी रोपाई नहीं करनी चाहिए ।

किस्में : भारत में घृतकुमारी की बहुत सारी किस्में विकसित नहीं हुयी हैं फिर भी आई.सी.-111271, आई.सी.-111280, आई.सी.-111269 और आई.सी.-111273 का व्यावसायिक तौर पर उत्पादन किया जा सकता है । इन किस्मों में पाई जाने वाली एलोडिन की मात्रा 20 से 23 प्रतिशत तक होती है।

अच्छी पौध का चयन : व्यावसायिक उत्पादन के लिए घृतकुमारी की 4-5 पत्ती वाली लगभग चार महीने पुरानी, 20-25 सें.मी. लम्बाई के पौधे (सकर्स) का चयन करते हैं। घृतकुमारी के पौधे की यह खासियत होती है कि इसे उखाड़ने के महीनों बाद भी लगाया जा सकता है ।

लगाने की दूरी : घृतकुमारी के पौधे को हम 60 x 60 सें.मी. (दो फीट) की दूरी पर लगाना चाहिए। मतलब लाईन-से-लाईन की दूरी 60 सें.मी. और पौधे-से-पौधे की दूरी 60 सें.मी. रखते हैं। पौधे की दूरी किस्मों के अनुसार कम या ज्यादा हो सकती है । घृतकुमारी का पौधा लगाते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पौधे को लगाने के बाद मिट्टी को अच्छी तरह दबी हो। एक एकड़ में औसतन 11000 पौधे लगते हैं।

खाद और उर्वरक : साधारणतया घृतकुमारी को कम उपजाऊ जमीनों में लगाते हैं और कम खाद और उर्वरक के भी इससे अच्छा उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं । लेकिन अच्छी उपज के लिए खेत को तैयार करते समय 10-15 टन सड़ी हुई गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर से इस्तेमाल करना चाहिए इससे उत्पादन में गुणात्मक रूप से वृद्धि होती है। गोबर की खाद का इस्तेमाल करने से पौधे की बढ़वार तेजी से होती है और किसान एक वर्ष में एक-से-अधिक कटाई कर सकता हैं।

सिंचाई : घृतकुमारी शुष्क क्षेत्र के लिए उपयुक्त फसल मानी जाती है और यह पानी की कमी को आसानी से बर्दाश्त कर लेती है । लेकिन अधिक उत्पादन के लिए उसकी क्रांतिक अवस्था में सिंचाई करना काफी लाभप्रद होता है । पहली सिंचाई पौध लगाने के बाद तथा दूसरी और तीसरी सिंचाई आवश्यकतानुसार करनी चाहिए । वर्ष में 2-3 जीवन रक्षक सिंचाई करने से भी अच्छी पैदा हो सकती है । प्रत्येक कटाई के बाद एक सिंचाई देना लाभदायक होता है ।

खरपतवार नियंत्रण : फसल को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए । प्राय: कम उपजाऊ जमीन में खरपतवार का प्रकोप काफी कम होता है फिर भी खेत में यदि खरपतवार की समस्या हो तो उसे भौतिक/यांत्रिक विधि से नष्ट कर देना चाहिए । खरपतवार निकालते वक्त घृतकुमारी के सूखे पत्तो और रोगग्रसित पौधों को भी निकालते रहना चाहिए ।

कीड़ा-बीमारी: घृतकुमारी में कीड़ा-बीमारी का प्रकोप नही के बराबर होता है । पहाड़ी क्षेत्रों में दीमक का प्रकोप हो सकता है जिसका नियंत्रण क्लोरोपाईरिफॉस की 5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में मिलाकर व्यवहार करके किया जा सकता है ।

कटाई और उपज : घृतकुमारी की पत्ती जब पूरी तरह विकसित हो जाये, तब उसकी तुड़ाई करनी चाहिए । परन्तु पत्तियों को तोड़ते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि पौधे के बीच की कम-से-कम नवीनतम पत्तियाँ पौधे में लगी हो, अन्यथा पौधे का विकास रूक जायेगा । औसतन प्रति हेक्टेयर 15-20 टन ताजी पत्ती का उत्पादन होता है । अच्छी देखभाल वाली फसल से 25-35 टन प्रति हेक्टेयर तक ताजी पत्ती प्राप्त की जा सकती है।

बाजार व्यवस्था : आज भारत के साथ-साथ विदेशों में भी घृतकुमारी के पत्तों की मांग बहुतायत में है। अनेक कम्पनियां और संस्थायें किसानों के साथ मिलकर घृतकुमारी के पत्तों की खरीद कर रही हैं । घृतकुमारी के विपणन में कृषि विज्ञान केन्द्र किसानों की मदद कर सकता है।

❑

अध्याय 6

स्टीविया की वैज्ञानिक खेती

व्यक्ति की अनियमित दिनचर्या एवं खानपान से विभिन्न प्रकार की बीमारियों का प्रसार तीव्र गति से होता जा रहा है जिसमें मधुमेह एक प्रमुख बीमारी के रूप में उभरी है। चिकित्सा विज्ञान के अनुसार आने वाले समय में आबादी का एक बड़ा हिस्सा इसकी चपेट में आ सकता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि इसके लिए अभी से बचाव के उपाय खोजे जायें जो कारगर हो सके। जिसके लिए विशेषकर मधुमेह रोगियों के लिए शक्कर पूर्ति हेतु स्टीविया लाभदायक साबित हो चुका है। स्टीविया के पत्तों में मिठास उत्पन्न करने वाले तत्व होते हैं जिन्हें स्टीवियोसाइड एवं ग्लूकोसाइड के नाम से जाना जाता है। इसके अलावा इनमें 6 और तत्व होते हैं जिनमें इन्सुलिन को संतुलित करने का गुण होता है। इसकी मिठास टेबुल सुगर से ढाई सौ गुना एवं सुक्रोस से तीन सौ गुना अधिक होती है। इसमें कृत्रिम मिठास उत्पन्न करने वाले अन्य कई पदार्थों का विकल्प बनने की अच्छी संभावनाएं हैं। अभी तक स्टीविया उत्पादों के उपयोग से मनुष्य पर किसी भी प्रकार का विपरीत प्रभाव पड़ने की शिकायत नहीं पाई है। यह कैलोरी और झागहीन होता है तथा पकाने पर डार्क भी नहीं पड़ता। स्टीवियोसाइड पत्ती में उनके वजन के अनुसार 3 से 10 प्रतिशत तक होता है स्टीवियोसाइड में से ग्लूकोसाइड समूह को पृथक कर स्टीविऑल उत्पादित किया जाता है। इसके अलावा गिबरेला फ्यूजीकरोई नामक फफुंद से गिवरैलिक एसिड के उत्पादन में भी इसका उपयोग होता है।

उत्पत्ति स्थान एवं वितरण : स्टीविया (स्टीविया रिवौडिआना) मूलत: दक्षिण पश्चिम पैरागवे का है और इसका विस्तार संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील, जापान, कोरिया, ताइवान एवं दक्षिण पश्चिम एशिया तक है। जापान एवं कोरिया में सामान्यत: इसे का-हे-ए (मीठी झाड़ी) के नाम से जाना जाता है।

वनस्पति शास्त्र : स्टीविया रिबौडिआना (यूपेटोरियम रिबौडिआना) एस्टरासिएइ का सदस्य है। इसका पौधा पतला झाड़ीनुमा होता है और इसमें डंठन नहीं होते। इसके पुष्प छोटे और सफेद तथा अनियमित क्रम में होते हैं।

जलवायु : यह एक मध्यम आर्द्रता का सबट्रॉपिकल पौधा होता है जो 11-41 डिग्री से० तापमान पर उगाया जा सकता है। इसकी अच्छी वृद्धि के लिये 31 डिग्री से० तापमान उपयुक्त पाई गई है। उचित एवं उष्ण दशाओं में इसका अंकुरण अच्छा होता है। इस प्रकार लांग ग्रोइंग सीजन, न्यूनतम पाला, उच्च प्रकाश और उष्ण ताप की अवस्था स्टीविया के पत्तों के उच्च उत्पादन में सहायक होती है।

मिट्टी : पानी की विफलता के साथ दलदली रेतीली भूमि इसके लिये सर्वाधिक उपयुक्त होती है इसकी अच्छी बढ़त के लिए 6.5-7.5 पी.एच. की अम्लीय से उदासीन भूमि उपयुक्त होती है। इसकी कृषि के लिये क्षारीय भूमि का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह पौधा लवण की उपस्थिति सहन नहीं करता।

फसलोत्पादन : इस पौधे की खेती के लिये यद्यपि बीजों के अंकुरण और तनों के रोपण, दोनों तरीकों का इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन चूँकि बीजों का अंकुरण बहुत कम होता है इसलिए सामान्यत: रोपण की विधि अधिक उपयुक्त कही जा सकती है। रोपण के लिये पत्तों के अक्ष से 15 सेमी० लम्बाई का तना काटना होता है। इस कार्य के लिये चालू वर्ष के पौधों से बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं। पैकोब्यूट्राजोल के

साथ 100 पीपीएम की दर से उपचारित करने पर जड़ों के शीघ्र ही जमने में सहायता मिलती है। इस उपचारण का अधिक प्रभाव उस समय देखने को मिलता है जब कटिंग्स का रोपण फरवरी–मार्च माह में किया जाता है।

प्रजातियाँ : अभी तक इस फसल की किसी अन्य नाम से प्रजाति उपलब्ध नहीं है।

रोपण का तरीका : स्टीविया को सामान्यत: मेड़ों में रोपा जाता है जिसमें कतार की दूरी 22 सेमी० के मध्य होती है। पौधों के अच्छी तरह जमने के लिये कटिंग्स के रोपण के तत्काल बाद हल्की सिंचाई करनी चाहिये।

पोषक तत्वों का प्रबंधन : रोपण के पश्चात् खेतों को कार्बनिक खाद जैसे एफ.वाई.एम. अच्छी मात्रा में देना चाहिये। अच्छी तरह जुताई भी करनी चाहिये। अच्छी वृद्धि और ज्यादा पत्तों की प्राप्ति के लिये उर्वरक की खुराक 60:30:45 किग्रा० एन.पी.के. प्रति हेक्टेयर देनी चाहिये। सूक्ष्म तत्वों जेसे बोरान और मैग्नीज के छिड़काव से भी पत्ते के उत्पाद में बढ़त देखी गई है।

सिंचाई प्रबंधन : इसकी खेती के लिये पानी की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है और ग्रीष्म ऋतु में नियमित सिंचाई जरूरी होती है। ग्रीष्म ऋतु में फसल की हर 8 दिन के अंतराल में सिंचाई करनी होती है।

फसलों की सुरक्षा : यह फसल पर्याप्त रूप से रूक्ष होती है। इस कारण इसमें विभिन्न प्रकार के कीटों और बीमारियों का आग्रमण नहीं हो पाता। लेकिन कभी–कभी इसमें बोरान की कमी का प्रभाव देखने को मिलता है, जिससे पत्तों में धब्बे आ जाते हैं। दो प्रतिशत की दर से बोरेक्स का छिड़काव देकर इस समस्या से निजात पाई जा सकती है।

पुष्पों छंटाई : स्टेविओसाइड चूँकि पत्तों में होता है इसलिये पौधों की अच्छी बढ़त और प्रकाश संश्लेषकों के अधिक संग्रहण को सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से इसके पुष्पों की छंटाई की जाती है। पुष्पों की छंटाई पौधों के रोपण के 30, 45, 60, 75 एवं 85 दिनों के पश्चात् की जाती है। रैटून फसल होने की स्थिति में सामान्यत: पहली कटाई के 40 दिनों के पश्चात् पुष्प आते हैं अत: ऐसी स्थिति में छंटाई 40 और 55 वें दिन की जाती है।

कटाई एवं उपज : इसकी फसल रोपण के तीन माह पश्चात् पहली कटाई की अवस्था में आ जाती है। पुनरोत्पादन को सहूलियत प्रदान करने के लिये पौधों को जमीन से 5–8 सेमी० ऊँचाई पर काटना चाहिये। नब्बे दिन के अंतराल पर इसे पुन: काटा जा सकता है। एक वर्ष में इसकी चार बार कटाई की जा सकती है। उत्पादन प्रति हेक्टेयर प्रति फसल लगभग 3 से 3.5 टन पत्ते प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रकार एक हेक्टेयर क्षेत्र से प्रति वर्ष लगभग 10 से 12 टन पत्ते प्राप्त किये जा सकते हैं

काढ़े का निस्सारण : इस प्रक्रिया के अंतर्गत कच्चे माल का जल निस्सारण किया जाता है। प्रक्रियाकरण के पूर्व पत्तों के 0.3–0.9 मिमी. के टुकड़े किये जाते हैं और उन्हें एसीटोन के साथ 58°C ताप पर 5 घंटों तक शोधित किया जाता है। इसके पश्चात् 25-90°C ताप पर निर्वात के द्वारा मिश्रण से एसीटोन को पृथक कर दिया जाता है निस्सरण 40–50 डिग्री ताप तक 2 से 4 घंटों तक जारी रखा जाता है। इसके पश्चात् प्राप्त सामग्री को निथारकर और सारकृत कर कृत्रिम मिठास प्रदान करने वाला तत्व प्राप्त किया जाता है जिसका औषधि और अन्य कार्यों में उपयोग किया जाता है।

❑

अध्याय **7**

जापानी पुदीना की खेती

डा० अजीत कुमार पाण्डेय
शोध सहायक, भा.कृ.अनु.परि. का पूर्वी क्षेत्र, पटना

हालांकि व्यापारिक जगत में जापानी पोदीनें को हीं मेन्था अथवा मिन्ट के नाम से जाना जाता है। परन्तु तकनीकी रूप से मेन्था शब्द पोदीने के एक समूह का प्रतिनिधित्व करता है जिसमें पोदीने की कई प्रजातियाँ सम्मिलित हैं, जैसे–जापानी पोदीना या पिपर मिन्ट, बर्ग्रामोट मिन्ट आदि। इस प्रकार मेन्था के समूह में कई प्रजातियाँ सम्मिलित हैं जिनमें से एक प्रजाति जापानी पोदीना भी है। वर्तमान में विश्व भर में जापानी पोदीना के उत्पादन के क्षेत्र में भारत दूसरे स्थान पर (प्रथम स्थान चीन को प्राप्त है) जबकि पिपर मिन्ट तथा स्पीयर मिन्ट के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमेरिका को प्रथम स्थान प्राप्त है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा आदि इसके प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। इनके साथ–साथ बिहार राज्य में भी इसकी खेती प्रारंभ हो चुकी है। बिहार में बढ़ते हुए सुगंधित फसलों में मेंथा की खेती वृहत रूप से अपनाई जा रही है क्योंकि परम्परागत खेती ज्यादा लाभकारी न होने के कारण किसानों का ध्यान मेंथा की खेती की ओर खींचता जा रहा है। इसकी खेती रबी फसल के उपरांत बाकी बचे खाली समय में खेतों में उपजायी जा रही है। इस तरह किसानों को रबी फसल के उपरांत अतिरिक्त आमदनी हासिल करने का अच्छा मौका मिल रहा है। उपयुक्त उपजाऊ क्षेत्र में सामान्य मौसम, अच्छी सुविधाएँ एवं आसानी से श्रमिक उपलब्ध होने के कारण प्रदेश में मेन्था की खेती होने की अपार सम्भावनाएँ प्रतीत हो रही है। प्रदेश में अपेक्षाकृत कम रासायनिक खादों एवं कीट रसायन का उपयोग करना मेन्था की व्यवसायिक खेती के लिए अच्छा माना जाता है। हालाँकि बिहार में सुगंधित पौधों की खेती अभी प्रारंभिक अवस्था में हैं फिर भी पिछले कुछ वर्षों में मेन्था की व्यवसायिक खेती कई जिलों में वृहत स्तर पर अपनायी जा रही है। बढ़ती हुई इसकी खेती एवं इससे प्राप्त तेल एवं अन्य अवयव देश को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अपना कब्जा एवं दबदबा बनाए रखने की ओर अग्रसर है।

tkikuh iknhu dh [krh dh fofèk : इसकी खेती एक एकवर्षीय फसल के रूप में की जाती है तथा एक वर्ष में इसकी दो से तीन कटाइयाँ ली जा सकती है। सीमैप, लखनऊ द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न भागों में इसकी खेती को प्रोत्साहित करने की दिशा में काफी कार्य किया गया है।

mi;Dr tyok; : इसकी खेती के लिए समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है। वैसे इसकी खेती उष्ण एवं उपोशण जलवायु में भी सफलतापूर्वक की जा सकती है। फसल की अच्छी बढ़वार के लिए दिन का तापमान 30°C एवं रात का तापमान 18^0C होना चाहिए। औषत वार्षिक वर्षा 200–250 से.मी. चाहिए। वार्षिक वर्षा की कमी को नहर अथवा टयूबबेल के पानी से सिंचाई करके पूरा किया जा सकता है। बिहार की जलवायु इसकी खेती के लिए उपयुक्त है।

mi;Dr Hkfe vFkok feÍh : समतल, अच्छे जल निकासवाली भूमि जिसकी मिट्टी बलुई दोमट हो तथा जिसमें जीवांशों की प्रचुरता हो एवं जिसका पी0 एच0 मान 6.0–7.5 हो, जापानी पुदीना की खेती के लिए अच्छी होती है। बिहार की सामान्य पी0 एच0 वाली लगभग सभी प्रकार की मिट्टियों में इसकी

खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है यदि पानी का उचित प्रबन्ध हो। क्योंकि जापानी पोदीना एक शाकीय फसल है अतः अपनी अच्छी बढ़त के लिए इसे पोषक तत्वों की काफी अधिक आवश्यकता होती है। भारी एवं चिकनी मृदाओं में इन पौधों के विकास में कठिनाईयाँ होती है। आलू उगाए जाने वाले खेतों में मेन्था पौधों की काफी अच्छी बढ़त होती है। इन खेतों में जल जमाव की संभावना कम रहती है।

eUFkk e ik; tku oky ie[k rRo ¼100 xke e½ %

Øe l-	*x.k*	*vkdM ¼ifr 100 xke½*	*Øe l-*	*x.k*	*vkdM ¼ifr 100 xke½*
1)	कार्बोहाइड्रेट	5 ग्राम	5)	थाईमिन	0.05 मि0 ग्राम
2)	वसा	0.6 ग्राम	6)	कैरोटीन	1620 मि0 ग्राम
3)	कैल्सियम	200 मि0 ग्रा0	7)	एसकोरबिक एसिड	1 मि0 ग्राम
4)	लोहा	16 मि0 ग्राम	8)	कैलोरी	48 कि0 कैलोरी

Qly dh vofek : यह एक एकवर्षीय फसल है तथा एक वर्ष के दौरान इसकी दो से तीन कटाइयाँ ली जा सकती है। कई क्षेत्रों में इसकी दो ही कटाइयाँ लेतें हैं। इसी प्रकार कई क्षेत्रों में इसकी केवल एक हीं कटाई ली जाती है, विषेशतया ऐसे संदर्भों में जहाँ मुख्य उद्देश्य अगली फसल के लिए बीज अथवा सकर्स प्राप्त करने का हो। इस प्रकार अपनी–अपनी सुविधानुसार एक, दो अथवा तीन कटाइयाँ हीं लेतें हैं। तीन कटाइयों के उपरांत पौधे इतने घने हो जाते हैं कि उन्हें उखाड़ना अनिवार्य ही हो जाता है अन्यथा उत्पादन नही मिल पाता।

mUur'khy itkfr;k : कोसी, हिमालय, कुशल, गोमती, शिवालिक। इन प्रजातियों में कुशल तेजी से बढ़ती है और इसका उत्पादन भी दूसरा प्रजातियों से लगभग दुगुना होता है। वस्तुतः मेन्था की फसल में काफी अधिक सकर्स का उत्पादन होता है। एक अनुमान के अनुसार प्रथम वर्ष में यदि एक क्विंटल सकर्स लगाई जाए तो एक वर्ष के उपरान्त इससे 50 गुना ज्यादा सकर्स तैयार हो जाती है। इस प्रकार आगामी फसलों के लिए सकर्स किसान के अपने ही खेत में तैयार हो जाता है अतः उसे अगली फसल हेतु बीज खरीदना नहीं पड़ता। यही वजह है कि अधिकांशतः किसान चाहकर भी अपनी फसल की पुरानी प्रजाति नहीं बदल पाते जिसके फलस्वरूप वे उन्नतशील प्रजाति से प्राप्त हो सकने वाले ज्यादा उत्पादन तथा अन्य लाभों से वंचित रह जाते हैं।

ioekku : इसका प्रबर्धन प्रायः जड़ भाग द्वारा किया जाता है जिसे सकर्स कहते हैं। 5–7 से0 मी0 लम्बा सकर्स 4–5 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की दर से जरूरी होता है। प्रत्येक सकर्स के टूकड़े में कम से कम एक आंख (नोड) होनी चाहिए। अच्छे सकर्स मांसल, रसीले एवं सफेद होते हैं तथा सकर्स रोगमुक्त होने चाहिए। पहले से लगाई गई फसल को उखाड़कर उसकी निचली हिस्से से सकर्स प्राप्त करते हैं। एक एकड़ में लगाने के लिए जापानी पोदीने की लगभग एक क्विंटल सकर्स की आवश्यकता होती है। सकर्स की दर 10 रू0 प्रति कि0 ग्रा0 से लेकर 25 रू0 प्रति कि0 ग्रा0 तक हो सकती है।

fctkbl dk mi;Dr le; : वैसे तो जापानी पोदीने की बिजाई कभी भी (अधिक ठंड को छोड़कर) की जा सकती है परन्तु इसका सर्वाधिक उपयुक्त समय वह रहता है जब सर्दी का मौसम लगभग समाप्त हो रहा हो तथा गर्मी का मौसम प्रारंभ हो रहा है। अतः देश के अधिकांश मैदानी क्षेत्रों तथा बिहार के क्षेत्रों में मध्य जनवरी से मध्य फरवरी तक का समय इसकी बुआई के लिए सर्वोत्तम है परन्तु जिन क्षेत्रों में रबी की फसल लगाई गई हो वहाँ उनकी कटाई के बाद 30 मार्च तक जापानी पुदीना की बुआई की जा सकती है।

[kr dh r;kjh : इसकी बिजाई करने से पूर्व खेत को अच्छी प्रकार तैयार करना आवश्यक होता है। मिट्टी पलटनेवाले हल से 2–3 बार अच्छी जुताई करके मिट्टी भुरभुरी कर लें। अंतिम जुताई से पहले 15–20 टन सड़ी गोबर की खाद या कम्पोस्ट डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें। दीमक एवं

सूक्ष्मकृमि की बचाव के लिए 10 क्विंटल प्रति हे0 की दर से नीम की खल्ली खेतों में मिलाई जाती है। यदि सिंचाई की व्यवस्था फ्लड इरीगेशन से करनी हो तो खेत तैयार के उपरांत खेत की छोटी–छोटी क्यारियों में विभाजित कर दें ताकि सिंचाई देने में आसानी हो। जापानी पोदीने की फसल में खरपतवार काफी आते हैं अतः इन खरपतवारों से निपटने के लिए बिजाई से पूर्व किन्हीं प्री–इमर्जेन्स वाले खरपतवार नाशकों को उपयोग किया जा सकता है, जैसे – ऑक्सीफ्लुरोफेन 400 मि0 ली0 मात्रा 20–20 कि0 ग्रा0 बालू रेत में मिलाकर खेत में छिड़की जा सकती है, इस तरह हर वर्श अच्छी तरह से सड़ी हुई कम्पोस्ट, खाद, नीम की खल्ली एवं वर्मी कम्पोस्ट खेत में प्रति हे0 की दर से मिलाया जाना उपयुक्त रहता है। यथासम्भव जापानी पुदीना की खेती में किसी रासायनिक उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

fc tkbl dh fofèk : जापानी पोदीने की बुआई दो विधियों द्वारा की जाती हैं (अ) नर्सरी द्वारा तथा (ब) मुख्य खेत में सीधे बुआई द्वारा।

¼v½ ulj h }kjk : सबसे पहले सुविधानुसार 5 x 10 फीट की क्यारियाँ बनाते हैं। इन क्यारियों के किनारे को लगभग एक फीट ऊँचा रखते हैं। इन क्यारियों के खरपतवार साफ कर लें। प्रत्येक क्यारी में 50 कि0 ग्रा0 गोबर की सड़ी खाद डालकर अच्छी तरह जोतकर मिट्टी भुरभुरी बनावें। तैयार क्यारियों में धान की क्यारी की तरह ही पानी से भर दें तथा जापानी पोदीना की कटी हुई सकर्स को नर्सरी में बिखेर दें। सकर्स को बिखेरने से पहले उन्हें साफ कर और रात भर गोमूत्र (एक भाग गोमूत्र तथा दस भाग पानी) में डुबोकर रखते हैं या कार्बोडजिम के 5 ली0 घोल (0.15%) से 40 कि0 ग्रा0 सकर्स को उपचार किया जा सकता है। 2–3 दिन के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करते हैं। सिंचाई फब्बारे या स्प्रिंकलर्स से करें लगभग एक से डेढ़ सप्ताह के अन्दर सकर्स उगने शुरू हो जाते हैं। 40–45 दिन के बाद जब 4 से 5 पत्ते आ जाते हैं तब पौधों को नर्सरी से उखाड़कर खेत में रोप दिया जाता है। पहले से तैयार की गई खेत में रात में एक खुला पानी छोड़ देते हैं ताकि सुबह तक खेत अच्छी तरह गीला हो जाए। इससे सुविधा यह होती है कि केवल हाथ की उँगलियों के दबाव से ही बिचड़ों को खेत में रोपित किया जाता है। पौधों को 20 x 35 से0 मी0 की दूरी पर लगाना चाहिए। इस विधि से बिजाई करने पर लगभग 75–100 कि0 ग्रा0 सकर्स की आवश्यकता होती है।

ulj h fofèk ls jksikbl djus ls ykHk : (क) सकर्स की मात्रा कम लगती है एवं पौध रोपण पर खर्च में कटौती। (ख) रबी की फसल के उपरान्त किसानों को मेन्था की फसल से अतिरिक्ति आमदनी। (ग) खरपतवार नियंत्रण पर कम खर्च।

¼c½ e[; [ksr esa lhèks cqvkbl : इस विधि में नर्सरी में पौधों को तैयार करने की आवश्यकता नहीं होती है। सकर्स को सीधे मुख्य खेत में रोपाई कर दी जाती है। इस विधि में खेत को तैयार कर लेने के बाद देशी हल से मक्का की बुआई की तरह सकर्स को सीधे कूड़े में बुआई की जाती है। बुआई के बाद हल्की सिंचाई करें। यह भार्ट कर विधि है परन्तु यह विधि उपयुक्त नहीं है क्योंकि एक तो फसल के उगने के साथ हीं खरपतवार भी उग आते हैं जिनके नियंत्रण में काफी खर्च आता है और दूसरा खेत में अधिक गैप रह जाने की संभावना होती है क्योंकि कुछ सकर्स में उगाव नहीं भी हो सकता है इस विधि से बुआई के लिए एक से दो क्विंटल सकर्स की रोपाई वैसे हीं करते हैं जैसे धान की रोपाई करते हैं। पर खेत को केवल गीला रखते हैं। पानी लगाकर बुआई करने से फायदा यह रहता है कि सकर्स का उगाव अधिक होता है, और खेत खाली नहीं रहता है। मुख्य खेत में पौधों को 60×45 से0 मी0 की दूरी पर लगाया जाना उपयुक्त रहता है।

flapkbl : इसकी अच्छी बढ़त एवं उनकी अच्छी फसल प्राप्ति के लिए पर्याप्त सिंचाई की जरूरत होती है। अतः जहाँ सिंचाई की उचित व्यवस्था न हो वहाँ यह फसल न लगावें। खेत में हमेशा नमी बनाए रखने की आवश्यकता होती है इसलिए जल्द एवं हल्की सिंचाई अत्यंत आवश्यक है। मार्च में 10–15 दिन के अन्तर से, अप्रैल–जून में 6–8 दिन के अन्तर से तथा सर्दियों में 20–25 दिन पर हल्की सिंचाई करें। ड्रिप सिंचाई पद्धति द्वारा सिंचाई करने से समय के साथ–साथ पानी की भी बचत होती

है। फसल की प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई अवष्य करें। खेतों में नमी की कमी होने पर फसल की वृद्धि रूक सकती है।

[kkn ,o mo|jd : सामान्यतया 150 कि0 ग्रा0 नाइट्रोजन, 60 कि0 ग्रा0 फास्फोरस तथा 40 कि0 ग्रा0 पोटाश प्रति हे0 या 60 कि0 ग्रा0 नाइट्रोजन, 25 कि0 ग्रा0 फास्फोरस तथा 16 कि0 ग्रा0 पोटाश प्रति एकड़ प्रति वर्ष दिये जाने की अनुशंसा की जाती है। इनमें से फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा सकर्स रोपाई के पहले दी जानी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष मात्रा प्रत्येक कटाई के बाद 2 से 3 बार में देना चाहिए। यदि खेत की तैयारी के समय 15–20 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट डाली गई हो तो उर्वरकों की अतिरिक्त मात्रा देने की आवश्यकता नहीं होती है।

[kjirokj fu;=.k :– खरपतवार पुदीना की बढ़त को तो रोकते ही हैं साथ हीं पुदीने के तेल में अनैच्छिक बदबू उत्पन्न कर उसकी गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, इसलिए खरपतवार का नियंत्रण जरूरी है। खरपतवारों का नियंत्रण हाथ से निराई–गुड़ाई द्वारा तथा खरपतवारनाशी दवा के उपयोग से किया जा सकता है। अच्छे नियंत्रण के लिए कारमेक्स 80 डब्ल्यू0 पी0 (डाइयरॉन) 700 ग्राम प्रति हे0 की दर से 600–700 लीटर पानी में घोल कर फसल के जमाव से पहले छिड़काव करें और फिर 30–40 दिन बाद हाथ से निराई करें। इसी तरह दूसरी कटाई के एक महीना बाद भी हाथ से ही एक निराई–गुड़ाई कर दें।

ie[k jkx rFkk dhV : इस फसल पर लगने वाले प्रमुख कीट हैं : सेमीलुपर सुन्डी, रोऐंदार सुन्डी एवं जालीदार कीट हैं। जिनमें सर्वाधिक नुकसान रोऐंदार सुन्डी से होती है। जो कि पत्तों के हरे उत्तकों को खाकर इन्हें कागज की तरह जालीदार बना देती है। जिससे फसल को काफी हानि होती है। इसके रोकथाम के लिए इन्डोसल्फान या क्विनैलफॉस के 150 से 200 मि0 ली0 प्रति एकड़ या 400–500 मि0 ली0 प्रति हे0 की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। सेमीलुपर सुन्डी तथा जालीदार कीट के रोकथाम के लिए मालाथियॉन 50 ई0 सी0 का 300–400 मि0 ली0 प्रति हे0 की दर से छिड़काव करें। कभी–कभी इस फसल पर सूत्रकृमियों का भी आक्रमण हो जाता है जिससे सकर्स में गाँठे बन जाती हैं, जड़े फूल जाती है तथा जड़ों पर लाल धारियाँ बन जाती है। पौधा पीला एवं बौना हो जाता है। इसकी रोकथाम के लिए खेत की तैयारी के समय ही 5–7 क्विंटल नीम की खल्ली प्रति हे0 की दर से मिट्टी में मिला दें।

Qly pØ : जापानी पोदीनें को भी चावल, गेहूँ, सरसों, हल्दी, आलू आदि के साथ फसल चक्र बनाकर लगाने की सलाह दी जाती है। जैसे – धान–आलू–पुदीना, धान–पुदीना, धान–सरसों–पुदीना इत्यादि।

Qly dh dVkbl : जापानी पुदीना एक वर्षीय फसल है और एक वर्ष के दौरान तीन कटाईयाँ ली जा सकती है। इस फसल की पहली कटाई 100–120 दिन के उपरान्त पौधों पर हल्के सफेद –जामुनी रंग के फूल दिखाई दें अर्थात् जब 60–70 प्रतिषत पौधों में फूल आ जाते हैं। पौधों की कटाई भूमि सतह से 6–8 से0 मी0 की ऊँचाई से करते हैं। दूसरी कटाई 70–80 दिन बाद तथा तीसरी कटाई पुनः 70–80 दिन बाद करते हैं। तीसरी कटाई के बाद पौधों का विस्तार नहीं करना चाहिए। फसल की कटाई चमकीली धूप में दोपहर के समय तेज धारदार हेंसुए से करें। फसल काटने के बाद कम से कम 6 घंटे खेत में हीं पड़े रहने दें ताकि अतिरिक्त नमी सूख जाय। वैसे फसल काटने के 6 घंटे से तीन दिन के भीतर आसवन करके तेल निकाल लेना चाहिए।

vklou dh ifØ;k : जापानी पुदीना की खेती इसकी पत्तियों से तेल प्राप्त करने के लिए की जाती है। पत्तियों से तेल आसवन विधि से तैयार किया जाता है। प्रायः किसान लागत एवं सुविधा को देखते हुए वाष्पण विधि के अनुसार तेल हासिल करते हैं। इस विधि से चलनेवाले आसवन संयंत्र कम लात में बनाए जाते हैं तथा किसान खेत में ही संयंत्र में ही संयंत्र स्थापित करते हैं ताकि कच्चा माल

को ढोने की लागत से बचाया जाये एवं तेल की गुणवत्ता को बरकरार रखा जाए। ढेर में रखने से पत्तियों का सड़ना भुारू हो जाता है। एवं गर्मी निकलने से तेल में कमी आ जाती है। इन सभी कारणों का देखते हुए ज्यादातर किसान खेत में ही संयंत्र स्थापित करना उपयुक्त समझते हैं।

ok"i vklou fofek : आसवन के लिए वाष्प आसवन विधि सर्वाधिक उपयुक्त होती है, परन्तु ये काफी महँगी पड़ती है।

r|y dk mi;kx : मेन्था के तेल से भिन्न–भिन्न प्रकार के अव्यव जैसे मेन्थाल मेन्थाइल एसीटेट एवं मेन्थॉन प्राप्त किया जाता है। इन अवयवों एवं तेल का उपयोग औषधीय, च्युईगम, टॉफी एवं कैंडी बनाने में प्रयुक्त होते हैं। तेल का उपयोग खाँसी की दवाएँ, खुजली की दवाएँ, कण्डोमस, सिगरेट आदि में भी किया जाता है। मेन्था फ्लेक्स, मेन्था क्रिस्टल का उपयोग टूथपेस्ट, पान मसाले, बाम, शैम्पू, बबलगम, आफ्टर सेव लोशन आदि में उपयोग होता है।

r|y dh mit : जापानी पुदीना से लगभग 250–300 कि0 ग्रा0 तेल प्रति हे0 प्राप्त होता है। प्राप्त होने वाले तेल की मात्रा कई बातों पर भी निर्भर करती है जैसे–उगाई गई प्रजाति, फसल की वृद्धि, फसल की कटाई का समय, प्रयुक्त किया गया आसवन संयंत्र इत्यादि।

r|y HkMkj.k : एल्यूमिनियम या पोलीपैक के डिब्बों या कनस्टरों का उपयोग तेल रखने के लिए किया जाता है। तेल डब्बा में पूरा भरा होना चाहिए। डब्बा खाली रहने पर उसकी हवा का तेल की गुणवत्ता पर खराब असर पड़ता है। यदि तेल को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना हो तो सोडियम मेटाबाइसल्फाइड 2 ग्राम प्रति लीटर तेल की दर से भंडारित तेल में डालें।

d|y ikfIr;k : यदि वर्ष भर में जापानी पोदीना की तीन कटाइयाँ ली जाऐं तथा तेल की बिक्री दर 300 रू0 प्रति कि0 ग्रा0 मानी जाए तो किसान को एक एकड़ से लगभग 30,000 रू0 की प्राप्तियाँ होती हैं। इनमें से यदि कुल खर्च हटा दिया जाए तो प्रति एकड़ 18–20,000 रू0 का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। तेल की बिक्री के साथ–साथ इसके पत्तों से प्राप्त होनेवाली खाद भी उपयोगी होती है, जिससे आगामी फसलों में खाद से संबंधित होने वाले खर्च को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार एक वर्श की खेती के उपरांत किसान को जापानी पोदीना के 40–50 क्विंटल सकर्स भी प्राप्त होंगें जिन्हें बेचकर अतिरिक्त लाभ भी कमाया जा सकता है।

tkikuh iknhu dh Qly ij ifr ,dM gku okys vk;&0;; dk fooj.k %

¼d½ dqy ykxr :

ykxr [kpZ dh fofHkUu enas		*iFke o"kZ #i;s*	*f}rh; o"kZ #i;s*
1	खेत तैयार करने की लागत	1500	1500
2	बीज की लागत	1500	–
3	खाद तथा उर्वरकों की लागत	1000	–
4	खरपतवार नियंत्रण तथा निंदाई–गुड़ाई पर व्यय	1000	1000
5	सिंचाई पर व्यय	800	800
6	फसल सुरक्षा पर लागत	500	500
7	फसल कटाई पर व्यय	500	500
8	आसवन पर व्यय (50 रू0 प्रति कि0 ग्रा0 तेल)	5000	5000
	dqy ;ksx % #i;s	*11800*	*9300*

¼[k½ ikfIr;k¡ :		
1 तेल की बिक्री से प्राप्तियाँ	30,000	30,000
(300 रू0 प्रति कि0 ग्रा0 की दर से)		
2 सकर्स की बिक्री से प्राप्तियाँ	20,000	20,000
(25 क्विंटल सकर्स 800 रू0 प्रति क्विंटल की दर से)		
	50,000	50,000
¼x½ 'kq) ykHk %	*38]200*	*40]700*

उपरोक्तानुसार देखा जा सकता है कि जापानी पोदीना काफी उपयोगी फसल है। विषेष रूप से इसलिए भी क्योंकि इसकी खेती आसान है, इसके बीज पर ज्यादा खर्च नहीं होता, मध्य भारत की जलवायु इसके लिए काफी अनुकूल है, इसका बाजार काफी विस्तृत है, इसे पशुओं से कोई नुकसान नहीं होता तथा प्राकृतिक आपदाओं का इस पर कोई विशेष असर नहीं होता। अतः जिन क्षेत्रों में सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो, वहाँ के किसानों के लिए जापानी पोदीनों की खेती काफी अधिक लाभकारी है।

❑

कीटनाशी दवाएँ जिनका उत्पादन, निर्यात एवं उपयोग भी निषेधित हैं।

1. मिथोमाइल 24% एल.
2. मिथोमाईल 12.5% एल.
3. फास्फामिडान 85% एस.एल.
4. कार्बोफ्यूरान 50% एस.पी.

भारत में उपयोग हेतु प्रतिबंधित कीटनाशी दवाएँ

1. एल्यूमिनियम फास्फाइड
2. डी.डी.टी.
3. लिन्डेन
4. मिथाइल ब्रोमाइड
5. मिथाइल पैराथियान
6. सोडियम साइनाईड
7. मिथोक्सी इथाइल मरक्यूरिक क्लोराइड

80 मानोक्रोटोफास (सब्जी के लिए निषेधित)

9. इण्डोसल्फान (केरल राज्य के लिए निषेधित)
10. फेनिट्रोथियान
11. डाइजिनान (कृषि उपयोग के लिए निषेधित)
12. फेन्थियान (कृषि उपयोग के लिए निषेधित)

अध्याय 8

तुलसी की वैज्ञानिक खेती

तुलसी की ओसिमम बेसीलीकम प्रजाति को तेल उत्पादन के लिए उगाया जाता है। तुलसी की इस प्रजाति की भारत में बड़े पैमाने पर खेती होती है। उत्तर प्रदेश में बरेली, बदायूँ, मुरादाबाद और सीतापुर जिलों में तथा बिहार के मुंगेर जिले में इसकी खेती की जाती है। इसका प्रयोग परफ्यूम व कास्मेटिक इन्डस्ट्रीज में अधिक होता है। तुलसी की ओसिमस सेंक्टम प्रजाति से भी सारभूत तेल एवं सूखी पत्तियों की बाजार में माँग है। इस प्रजाति के सारभूत तेल की अधिक कीमत होती है, किन्तु तेल की मात्रा कम मिलती है।

तुलसी की विभिन्न प्रजातियाँ

भारत में तुलसी का पौधा धार्मिक एवं औषधीय महत्व का है। इसे हिन्दी में तुलसी, संस्कृत में सुलभा, ग्राम्या, बहुभंजरी एवं अंग्रेजी में होली बेसिल के नाम से जाना जाता है। लेमिएसी कुल के इस पौधे की विश्व में 150 से ज्यादा प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इसकी मूल प्रकृति एवं गुण एक समान हैं।

प्रमुख प्रजातियाँ निम्न प्रकार हैं :

1. बेसिल तुलसी या फ्रेंच बेसिल
   - (i) स्वीट फेंच बेसिल या बोबई तुलसी
   - (ii) कर्पूर तुलसी
   - (iii) काली तुलसी
   - (iv) वन तुलसी या राम तुलसी
   - (v) जंगली तुलसी
2. **होली बेसिल**
   - (vi) श्री तुलसी या श्यामा तुलसी

तुलसी अत्यधिक औषधीय उपयोग का पौधा है। जिसकी महत्ता पुरानी चिकित्सा पद्धति एवं आधुनिक चिकित्सा पद्धति दोनों में है। वर्त्तमान में इससे अनेकों खांसी की दवाएँ साबुन, हेयर शेम्पू आदि बनाये जाते लगे हैं जिससे तुलसी के उत्पाद की माँग काफी बढ़ गई है। अतः इस माँग की पूर्ति बिना खेती के संभव नहीं है।

मृदा व जलवायु : इसकी खेती, कम उपजाऊ जमीन जिसमें पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध हो, अच्छी होती है। बलुई दोमट जमीन इसके लिए बहुत उपयुक्त होती है। इसके लिए उष्ण कटिबंध एवम् कटिबंधीय दोनों तरह की जलवायु उपयुक्त होती है।

जमीन की तैयारी : जमीन की तैयारी ठीक तरह से कर लेनी चाहिए। जमीन जून के दूसरे सप्ताह तक तैयार हो जानी चाहिए।

बुवाई/रोपाई : इसकी खेती बीज द्वारा होती है लेकिन खेती में बीज की बुवाई सीधे नहीं करनी चाहिए।

पहले इसकी नर्सरी तैयार करनी चाहिए बाद में उसकी रोपाई करनी चाहिए।

पौध तैयार करना : जमीन की 15-20 सेमी० गहरी खुदाई कर के खरपतवार आदि निकाल कर तैयार कर लेना चाहिए। 15 टन प्रति हे. की दर से गोबर की सड़ी खाद अच्छी तरह मिला देना चाहिए। 1 मी० × 1 मी० आकार की जमीन सतह से उभरी हुई क्यारियाँ बना कर उचित मात्र में कम्पोस्ट एवं उर्वरक मिला देना चाहिए। 750 ग्रा० - 1 किग्रा० बीज एक हेक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। बीज की बुवाई 1 : 10 के अनुपात में रेत या बालू मिला कर 8-10 सेमी० की दूरी पर पंक्तियाँ में करनी चाहिए। बीज की गहराई अधिक नहीं होनी चाहिए। जमाव के 15-20 दिन बाद 20 कि०/हे० की दर से नेत्रजन डालना उपयोगी होता है। पांच-छह सप्ताह में पौध रोपाई हेतु तैयार हो जाती है।

रोपाई : सूखे मौसम में रोपाई हमेशा दोपहर के बाद करनी चाहिए। रोपाई के बाद खेत को सिंचाई तुरन्त कर देनी चाहिए। बादल या हल्की वर्षा वाले दिन इसकी रोपाई के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं। इसकी रोपाई लाइन में लाइन 60 सेमी० तथा पौधे से पौधे 30 सेमी० की दूरी पर करनी चाहिए।

सिंचाई : अगर वर्षा के दिनों में वर्षा होती रही तो सितम्बर तक इसके लिए सिंचाई की कोई आवश्यकता नहीं होती है अन्य मौसम में लगाने पर सिंचाई की आवश्यकता हो सकती है।

खर पतवार नियंत्रण : इसकी पहली निराई-गुड़ाई रोपाई के एक माह बाद करनी चाहिए। दूसरी निराई-गुड़ाई पहली निराई के 3-4 सप्ताह बाद करनी चाहिए। बड़े क्षेत्रों में गुड़ाई ट्रैक्टर से की जा सकती है।

उर्वरक : इसके लिए 15 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद जमीन में डालना चाहिए। इसके अलावा 75-80 किग्रा० नेत्रजन 40-40 किग्रा फास्फोरस व पोटाश की आवश्यकता होती है। रोपाई के पहले एक तिहाई नेत्रजन तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत में डालकर जमीन में मिला देने चाहिए। शेष नेत्रजन की मात्रा दो बार में खड़ी फसल में डालना चाहिए।

कटाई : जब पौधे में पूरी तरह से फूल आ जाये तथा नीचे के पत्ते पीले पड़ने लगे तो इसकी कटाई कर लेनी चाहिए। रोपाई के 10-12 सप्ताह के बाद यह कटाई के लिए तैयार हो जाती है।

आसवन : तुलसी का तेल पूरे पौधे के आसवन से प्राप्त होता है। इसका आसवन, जल तथा वाष्प, आसवन, दोनों विधि से किया जा सकता है। लेकिन वाष्प आसवन सबसे ज्यादा उपयुक्त होता है। कटाई के बाद तुलसी के पौधे को 4-5 घंटे छोड़ देना चाहिए। इससे आसवन में सुविधा होती है।

पैदावार : इसके फसल की औसत पैदावार 20-25 टन प्रति हेक्टेयर तथा तेल का पैदावार 80-100 किग्रा० हेक्टेयर तक होता है।

आय-व्यय विवरण

प्रति हेक्टेयर व्यय - रु० 10,500

तेल का पैदावार - 85 किलो प्रति हेक्टेयर

तेल की कीमत - 450 रुपया प्रति किलो = 85 × 450 = 38,250

शुद्ध लाभ = रु० 38,250 − 10,500 = 27,750

❑

अध्याय **9**

अश्वगंधा की वैज्ञानिक खेती

अश्वगंधा एक महत्वपूर्ण, प्राचीन औषधीय फसल है जिसका प्रयोग देशी चिकित्सा, आयुर्वेद, यूनानी पद्धति में होता है। इसे असगंधा, नागौरी असगंधा नामों से भी जाना जाता है। ताजी जड़ों से तीव्र गंधा आती है इसलिए इसे अश्वगंधा कहते हैं। इसका पौधा शुष्क एवं उपोष्ण (dry and Sub Tropical) जलवायु में भली प्रकार उगता है। इसलिए शुष्क क्षेत्र की बेकार भूमि को हरित रूप से सुंदरीकृत करने, उत्पादक बनाने हेतु यह एक व्यवहारिक फसल के पश्चिम भाग मुख्यतः मध्यप्रदेश के मनसा, नीमच, जावद एवं मानपुरा तहसीलों में तथा उसके आसपास एवं राजस्थान के कोटा, जयपुर, जोधपुर तथा जम्मू के वन क्षेत्रों में की जाती है। इस समय इस फसल की खेती करीब 600 हेक्टेयर से अधिक भूमि पर की जा रही है। अश्वगंधा के जड़ों की मांग एवं आपूर्ति/उत्पादन में लगभग तीन गुनाा से ज्यादा का अंतर है। बिहार में इसकी खेती शुरुआती स्तर पर है। कई शोध संस्थाएं एवं सौंदर्य प्रसाधन उत्पादन एवं निर्यातक इसकी व्यवसायिक कृषि को प्रोत्साहित करने में संलग्न हैं। जिसके कारण इसकी खेती बढ़ाई जा सकती है। इसकी सूखी जड़ों का प्रयोग टॉनिक बनाने, गठिया रोग, त्वचा की बीमारियां, फेफड़े की सूजन, पेट के फोड़ों तथा मंदाग्निी के उपचार में किया जाता है। लिकोरिया तथा पुरुषों में वीर्य संबंधी रोग दूर करने तथा कमर एवं कूल्हों के दर्द निवारण हेतु भी किया जाता है। हरी पत्तियों का प्रयोग जोड़ों की सूजन करने तथा क्षय के इलाज के लिए किया जाता है। इसका प्रयोग हर्बल चाय, पाउडर तथा गोलियां बनाने में करते हैं। इसके छाल का काढ़ा अस्थमा रोग में तथा बेड सोर में लगाने के काम में बनाने में प्रयुक्त होता है। असगंधा में मुख्य रसायन एल्कलाएड तथा विथेनोलोयड (स्टेरायडल लैक्टोन) हैं। इसकी जड़ों की बलवर्द्धक की पौष्टिकता जिन्सेंग के समान होने के कारण भारतीय जिन्सेंग भी कहते हैं।

t yok;| ,o Hkfe

अश्वगंधा को खरीफ के मौसम में देर से लगाते हैं जमीन में अच्छी मात्रा में नमी तथा शुष्क मौसम होनी चाहिए। इसकी खेती किसी भी प्रकार की जमीन में की जा सकती है। परंतु भुरभुरी, हल्की काली, बलुई दोमट या लाल मिट्टी पी.एच 7.0 से 8.0 हो और जल निकास का उचित प्रबंध हो, सर्वोपरी है। अधिक लवणीय व जलभराव वाली भूमि में इसकी खेती नहीं करनी चाहिए। 660–850 मिली मीटर वर्षा वाले क्षेत्र इसके लिए उपयुक्त है। इसको बरानी खेती के रूप में उगा सकते हैं। यदि रबी के मौसम में 1–2 वर्षा हो जाती है तो उपज में गुणात्मक सुधार होता है। अधिक आर्द्रता एवं छायादार स्थान पर इसकी बढ़वार कम रहती है। अतः शुष्क जलवायु उपयुक्त है। राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार के दक्षिणी भाग, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, पंजाब, गुजरात आदि प्रांतों की जलवायु इसके लिए उपयुक्त है।

Hkfe dh r|;kjh

सधारणतया इसकी खेती ऐसे खेतों में करते हैं जहां पर सिंचाई का अच्छा प्रबंध नहीं है तथा अन्न वाली फसलों का उगना लाभप्रद नहीं है। एक जुताई मिट्टी पलट हल से गर्मी मे करके वर्षा होने से पहले 2–3 बार खेत की जुताई करके पाटा लगा देते हैं। बुवाई के समय खेत को देशी हल से जोतकर मिट्टी भुरभुरी कर देना चाहिए। पाटा का प्रयोग करके खेत को सममतल कर देना चाहिए।

cht dh ek=k rFkk cqokbZ

साधारणतया इसको कृषक छिटकवां विधि द्वारा बोते हैं। इस विधि से बोने पर करीब 10–12 किलोग्राम बीज प्रति हेक्टेयर लगता है। यदि बीज को पंक्ति में बोया जाए तो उपज भी अच्छी मिलती है तथा उसकी निराई–गुड़ाई भी आसान रहती है। बीजों का जमाव कम होने तथा पौधों को अधिक मरने के कारण बुआई करने में बीज की मात्रा कम नहीं करनी चाहिए। दोनों प्रकार की बुवाई विधियों के बाद बीजों का अंकुरण 7–10 दिन बाद हो जाता है। इस विधि में बुवाई करने पर करीब 60 पौधों को एक मीटर में तथा लगभग 6 लाख पौधों को प्रति हेक्टेयर रखने चाहिए। भूमि की उर्वरता तथा अश्वगंधा की जाति के अनुसार भूमि में पौधों की दूरी अधिक की जा सकती है।

इस फसल को रोपाई विधि द्वारा भी लगाया जा सकता है। इसके लिए जुलाई में नर्सरी डालते हैं। एक हेक्टेयर खेत में अश्वगंधा लगाने के लिए 500 वर्गमीटर जमीन पर 5 किलोग्राम बीज की नर्सरी डालते हैं। 5–8 सप्ताह में पौधों को रोपाई के लिए तैयार हो जाते हैं। रोपाई मध्यान्ह के बाद करना चाहिए तथा पौधा लगाने के तुरंत बाद सिंचाई करना चाहिए। एक हल्की सिंचाई करने से जमाव सुनिश्चित हो जाता है। अश्वगंधा की बुवाई का उपयुक्त समय मानसून द्वारा निर्धारित करते हैं। इसकी बुवाई ऐसे समय करते हैं जब वर्षा 3/4 खत्म हो गयी हो। यह स्थिति अगस्त में आ पाती है इस समय तक मिट्टी वर्षा के पानी से पूर्ण से संतृप्त होता है। जिस दिन वर्षा बंद हो जाए उस दिन में पहले से ही तैयार भूमि में बुवाई करना चाहिए।

cht mipkj

बीज को खेत में बोने से पहले डाइथेन एम–45, इण्डोफिल–45, थीरम या डेल्टान इत्यादि से किसी एक से 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित कर लेना चाहिए।

moZjd ,oa fujkbZ&xqM+kbZ

साधारणतया अश्वगंधा को कृषक शुष्क क्षेत्रीय बेकार पड़ी भूमि में बरानी के रूप में उगाते हैं। किसान किसी तरह की रसायनिक खाद नहीं डालते। लेकिन यदि बुवाई से पहले 15 दिन किलोग्राम नेत्रजन तथा 15 किलोग्राम फास्फोरस प्रति हेक्टेयर की दर से पूर्णतया मिट्टी में मिलाकर बुवाई करें तो फसल अच्छी होती है।

बुवाई के 20–25 दिन बाद पौधों की दूरी ठीक कर देना चाहिए तथा जो भी खरपतवार उसमें उग आए हों तो उन्हें निकाल देना चाहिए। क्योंकि दूसरी निराई–गुड़ाई (खरपतवार नियंत्रण) बुवाई के दो महीने बाद करते हैं। फसलों में खरपतवार नहीं रहना चाहिए।

flapkbZ

अधिक वर्षा/पानी अश्वगंधा के लिए हानिकारक है। जहां इसे बारानी खेती के रूप में उगते हैं वहां यदि वर्षा उचित अंतराल पर होती रहे तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। यदि आवश्यकता हो तो पौधों के जीवन निर्वाह हेतु सिंचाई की जा सकती है।

mUur iztkfr;ka

डब्ल्यू एस 20
डब्ल्यू एस आर
पेषिता

Qly lqj{kk

जड़ों को निमेटोड तथा कीड़ों के प्रकोप से बचाने के लिए कार्बोफ्यूरान 2–2.5 किलो ए.आई.

/हेक्टेयर के हिसाब से बुवाई के समय खेत में मिलाकर प्रयोग करना चाहिए। नीम की खली का भी प्रयोग किया जा सकता है।

बीज की सड़न, पत्ती की सड़न, डैम्पिंग ऑफ, पौधों का झुलसा रोग, पौधा अंगमारी(सीडलिंग ब्लाइट), शीर्षाभीक्षय एवं पर्ण अंगमारी (डाई बैक और लाईट ब्लाइट) इसकी सामान्य बीमारियां है। कभी–कभी वाइरस जनित बीमारियों का भी प्रादुर्भाव होता है। ये विभिन्न बीमारियां पौधो की संख्या घटाकर पैदावर कम कर देती है। समय पर बुवाई, स्वस्थ पौधों से बीज लेकर, फसल चक्र का प्रयोग करके तथा जल निकास का उचित प्रबंध रखने से बीमारियों में कमी लायी जा सकती है। बुवाई से पूर्व बीजों को 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर डाइथेन एम–45 का छिड़काव 8–10 दिन के अंतर पर तब तक करते रहना चाहिए तब तक कि बीमारी नियंत्रित न हो जाए। फाइटोलोन, डाइथेन जेड–78 का भी 0. 3 छिड़काव कर सकते हैं।

इस फसल को कीड़ों से कोई ज्यादा नुकसान नहीं होता फिर भी पत्ती भक्षक कीटों के प्रकोप से फसल को सुरक्षित रखने के लिए रोगोर या नुआन 0.6 प्रतिशत का छिड़काव 2–3 बार करना चाहिए। 0.5 प्रतिशत मैलाथियान और 0.1–0.3 प्रतिशत कैल्थेन के मिश्रण का 10–15 दिन के अंतर पर छिड़काव करने से माहू माईट तथा अन्य कीड़ों का प्रकोप रूक जाता है।

[knkb] l[kkb rFkk HkMkj.k

दिसम्बर के माह से पौधों पर फल–फूल आने लगते हैं। जब पौधों की पत्तियां पीली पड़ने लगे तथा फल भी पीले हो जाये ंतब फसल खुदाई के लिए तैयारी हो जाती है। फसल की खुदाई जनवरी से मार्च के मध्य करते हैं। बुवाई के लगभग 150–170 दिन बाद फसल पक कर तैयार हो जाती है। पूरे पौधों को जड़ सहित खोदना चाहिए। पौधों को उपर से काटकर उचित नमी पर हल चलाकर भी जड़ें एकत्रित की जा सकती है। खुदाई के बाद जड़ों को धोकर 7–10 से.मी. के ठुकड़ों में काटकर सूखा लेना चाहिए और धूप या छाया में सूखा लेना चाहिए 10 से.मी. टुकड़ों में वाष्पीकरण जल्दी हो जाता है। जड़ों को इतना सुखाना चाहिए कि नमी 10–12 प्रतिशत रह जाये। सूखी जड़ों की लंबाई तथा मोटाई के अनुसार निम्नलिखित 3–4 ग्रेड में विभाजित करते हैं।

,&xM tM& इसमें जड़ के टुकड़े की लंबाई 7 से.मी. तथा व्यास 1.0 से1.5 से.मी. होती है। जड़े भरी हुई, चमकदार और सफेद होनी चाहिए।

ch&xM tM& इसमें जड़ के टुकड़े की लंबाई 5 से.मी. तथा वस 1 से.मी. या उससे कम होता है। जड़े ठोस, चमकदार और भरी होनी चाहिए।

lh&xM tM& इसमें जड़ों के टुकड़ों की लंबाई 3–4 से.मी. तथा व्यास 2 से.मी. या उससे कम होता है। ठोस किनारे वाली द्वितीयक जड़े रखी जाती है।

fuEu xM& इसमें वे जड़ें आती हैं जो कि कटी, फटी, पतल, खोखली, बहुत मोटी, छोटे टुकड़ों वाली तथा पीले रंग की होती है। जड़ों के टुकड़ों को टीन के शुष्क डिब्बों में भंडारण करना चाहिए जिससे मोल्ड, फफूंदी इत्यादि का प्रादुर्भाव न हो।

inkokj

अश्वगंधा के जड़ों की औसत उपज 6–7 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है। करीब 50 किलो प्रति हेक्टेयर बीज प्राप्त हो जाता है। व्यापारिक रूप से 6–15 मिली मीटर व्यास के 7–10 से.मी. लंबाई के जड़ों के टुकड़े अच्छे रहते हैं। जड़ों में 0.13–0.31 प्रतिशत एल्कालायड पाया जाता है।

vk; 0;; dk fooj.k ifr gDVs;j #i;s esa

0;;	#i;s
भूमि की तैयारी	2500.00
बीज, बुवाई एवं बीजोपचार	4000.00
खाद एवं उर्वरक	2500.00
सिंचाई	1000.00
निकाई एवं गुड़ाई एवं थिनिंग	1500.00
फसल सुरक्षा	500.00
जड़ की खुदाई, कटाई तथा श्रेणीकरण	2500.00
अन्य खर्च	2000.00
;kx	16500-00

vk;

5 क्विंटल जड़ प्रति हेक्टेयर की कीमत/6000 रुपये प्रति क्विंटल	42000.00
50 किलो बीज प्रति हेक्टेयर की कीमत/50 रुपये प्रति किलो	2500.00
	44500.00

शुद्ध आय 44500.00–16500.00 रुपये– 2800.00

❑

क्या पारम्परिक खेती जैविक है ?

पारम्परिक एवं जैविक कृषि में समानताएं।	जैविक विधियां जो जैविक कृषि में पायी जा सकती है।	जैविक कृषि कुछ विशेष विशिष्ठतायें।
1. रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी द्रव्यों, फफूँदी नाशी हर्बिसाइड, वृद्धिकारी पदार्थ (Growth Promoters), इत्यादि का प्रयोग नहीं किया जाता। 2. गुण सूत्रों को संशोधित कर उससे उतपन्न पौध एवं पशुओं की नस्ल (Genetically modified organism plants) का प्रयोग नहीं किया जाता। 3. जानवरों से तैयार खाद का प्रयोग किया जाता है।	1. फार्म से प्राप्त अवयवों से पोषक (Close Nutrient Cycles) तत्वों की पूर्ति। 2. वाह्य स्त्रोतों से प्राप्त अवयवों का न्यूनतम प्रयोग 3. फार्म के समस्त अवयवों का मल्चिंग (Multching) एवं कम्पोस्टिंग (Composting) द्वारा प्रयोग 4. मिश्रित खेती (Mixed Cropping) या फसल चक्र (Crop Rotation) का प्रयोग। 5. प्राकृतिक संसाधनों जैसे मिट्टी, ऊर्जा, पानी का टिकाऊ प्रबन्धन। 6. मृदा की उवर्श्रकता को बनाये रखना एवं मृदा क्षरण को रोकना। 7. पशु अनुकूल पशुपालन गतिविधियों का संचालन।	1. कीटनाशी प्रबंधन में सूक्ष्म जीवों से तैयार औषधियों का प्रयोग। 2. शत्रु कीटों का कुशल प्रबन्धन। 3. उच्च प्रजाति की बीमारी रहित फसल एवं पशु प्रजाति का प्रयोग। 4. हरी खाद (Green manures), Cover crops, नाइट्रोजन जनित पौधों का प्रयोग। 5. भूमि तैयार करने, खर पतवार निकालने एवं बुवाई हेतु अच्छी किस्म के उपकरणों का प्रयोग। 6. उन्नत तरीकों से प्राप्त खाद एवं Bio Fertilizer का प्रयोग।

अध्याय 10

खस की वैज्ञानिक खेती

खस मूलत: भारतीय उपमहाद्वीप का पौधा है। इसका उपयोग मूलत: तेल की प्राप्ति हेतु किया जाता है। जोकि खस के पौधे की जड़ों में पाया जाता है। खस के तेल में प्रमुख घटक वेटीवरॉल है जो 55-75% तक पाया जाता है। तेल का उपयोग सुगन्धित सुपारी निर्माण, परफ्यूमरी तथा शरबत आदि में किया जाता है। खस की जड़ों से तेल निकालने के बाद जो घांस बचता है उससे खिड़की एवं कूलर के पर्दे बनाये जाते हैं। खस की खती मुख्यत: राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश तथा झारखण्ड में किया जाता है।

खेत की तैयारी : खस एक कठोर प्रवर्ती का पौधा है अत: इसकी खेती हेतु खेत की कोई विशेष तैयारी करने की आवश्यकता नहीं होती है। परन्तु यदि खेत में किसी प्रकार की झाड़ियाँ अथवा घांस हो तो उसे साफ कर देना चाहिए तथा दो-तीन बार गहरी जुताई करके खेत को समतल कर देना चाहिए। कम उर्वराशक्ति वाली जमीनों में आखरी जुताई से पूर्व खेत में 5 टन गोबर खाद मिला देनी चाहिए और प्रति एकड़ 16-16 किलोग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश डालनी चाहिए। दूसरे वर्ष में प्रति एकड़ नाइट्रोजन की 16 किलोग्राम उपनिवेशन करनी चाहिए।

भूमि : अधिकतर खस की खेती अनुपाजाऊ भूमि में होती है। खस के पौधे आमतौर से नदियों के किनारों पर और दलदल भूमि से पाये जाते हैं। उनके लिए महीन बलुई और दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। इसकी खेती भूमि में भी की जा सकती है।

जलवायु : खस की खेती ज्यादा ठंढ वाले प्रदेशों को छोड़कर कहीं भी की जा सकती है। वैसे ज्यादा नमी तथा आदर्ता वाले क्षेत्र इसके लिए ज्यादा उपयुक्त होते हैं। औसतन 30 से० तापक्रम वाले क्षेत्रों यथा उष्ण आर्द्र जलवायु खस की खेती के लिए उपयुक्त होते हैं।

बुआई : लेमन ग्रास तथा जामा रोजा की तरह खस की बुआई भी स्लिप्स से की जाती है। स्लिप बनाने के लिए एक वर्ष पुराने पौधों को उखाड़कर उनसे स्लिर्प्स बनाया जाता है। यदि सिंचाई की प्रयाप्त व्यवस्था हो तो खस की स्लिप्स का रोपण दिसम्बर तथा जनवरी महीने को छोड़कर वर्ष में कभी भी किया जा सकता है। स्लिपर को जमीन में 5 सेमी० गहरा लगाया जाना चाहिए। जिन क्षेत्रों की मिट्टी ज्यादा उपजाऊ है उनमें स्लिप्स का रोपण 60 × 60 सेमी० की दूरी पर करना चाहिए। जबकि हलकी मिट्टी में इनका रोपण 30 × 60 सेमी० की दूरी में करना चाहिए। इस प्रकार एक हेक्टेयर में लगभग 25000 से 37500 स्लिप्स लगाई जाती है।

उत्तम किस्में : हाल ही में जो अन्वेषण हुए हैं उस आधार पर उत्तम किस्में निकाली गयी हैं। इनसे तेल अधिक प्राप्त होता है। पूसा हाइब्रिड-8, हाइब्रिड-16, सीमैप के. एस.-1, के.एस.-2, सुगंध आदि।

निदाई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण : खस की फसल में कोई खरपतवार नहीं पनप पाते परन्तु प्रारम्भिक दिनों में फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक होता है। इसके लिए बुआई के दो-तीन महीने के बाद फसल की एक बार हाथ से निदाई-गुड़ाई कर देनी चाहिए।

जल प्रबंधन : खस सूखा अवरोधी होता है कोई खास सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु गर्मी के मौसम में दो-तीन सिंचाई करने से उत्पादन में अच्छी वृद्धि पायी जाती है। सिंचाई हल्की करना चाहिए जो पौध विकास के लिए उपयुक्त पाया गया है।

रोग : खस में कोई विशेष रोग बीमारी नही लगती, परन्तु जड़ों में कभी-कभी दीपक या दूसरे कीटों का प्रकोप देखा गया है जिसके लिए थीमेर नामक दवा की 10 किग्रा० मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में देने पर लाभदायक रहता है।

तनों की कटाई : खस की फसल समान्यत: 18 से 24 महीने की फसल के रूप में ली जाती है। तथा लगाने से लगभग 18 माह के बाद जड़ें खुदाई के लिए तैयार हो जाती है। सितम्बर-जनवरी महीने में जब पौधे सुप्तावस्था में हों तो तने की कटाई कर देनी चाहिए। या कटी हुई घांस पशु चारे अथवा इंधन के रूप में उपयोग की जा सकती है। एक बार काट दिये जाने पर पौधा अच्छी प्रकार से वृद्धि करता है।

जड़ों की खोदाई : रोपने के 18 से 24 महीने के बाद खस की जड़ें खोदाई करने योग्य हो जाती है। खोदाई का काम जाड़े में (नवम्बर से फरवरी महीने तक) करना चाहिए। क्योंकि उस समय जड़ों में तेल की मात्रा सर्वाधिक होती है। और तेल की गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

उपज : दो वर्ष में जड़ों की खुदाई करने पर प्रति हेक्टेयर 30 क्विंटल जड़ प्राप्त होती है। 20-25 लीटर तेल एक हे० खस की खेती से प्राप्त किया जा सकता है।

फसल चक्र एवं अन्तर्वर्ती खेती : द्विवर्षीय फसल चक्र अपनाया जाता है।

दौनी एवं भण्डारण : जड़ों को साफ कर छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त कर भण्डारित किया जाता है। वाष्प आसवन विधि द्वारा जड़ों से तेल निकाला जाता है।

❑

कीट नियंत्रण में नीम का प्रयोग

1. 500 ग्राम नीम बीज की गिरी + 10 लीटर पानी → रात भर भिगोना छानना + 10 ग्राम साबुन → छिड़काव
2. 2 किलो हरी नीम पत्ती + 10 लीटर रात भर भिगोना → छानना → छिड़काव
3. 1 किलो नीम की खली (2-5 पतिशत तेल युक्त) + 10 लीटर पानी → रात भर भिगोना → छानना + 10 ग्राम साबुन → छिड़काव
4. 1 किलो नीम की खली (2-5 प्रतिशत तेल युक्त) + 10 लीटर पानी → रात भर भिगोना → छानना + 10 ग्राम साबुन → छिड़काव
4. 300 मिलीलीटर नीम तेल + 10 लीटर पानी → देर तक घोलना → घोल + 10 ग्राम साबुन → छिड़काव
5. 1 किलो हरी नीम पत्ती + एक लीटर गोमूत्र (24 घंटे पुराना) → रात भर मिलाकर रखना → छानना → छिड़काव

अध्याय 11

लेमनग्रास की वैज्ञानिक खेती

लेमनग्रास अथवा निंबू घांस भारतवर्ष के विभिन्न भागों में उत्पन्न होने वाली वह प्रमुख घांस है, जिसका उपयोग सुगंध उद्योग तथा औषधिय कार्यों में होता है। भारत में कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्रा, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, उड़ीसा आदि में लेमनग्रास की खेती बहुतायत की जाती है।

लेमनग्रास की मुख्यत: दो किस्में पायी जाती हैं। पूर्वी भारतीय लैमनग्रास अथवा सिम्बोपोंगान फ्लैक्सुओसिस तथा पश्चिमी भारतीय घास जिले सिम्बोंपोगान सिट्रेटस के नाम से जाना जाता है। इनमें से सिम्बोपोंगान फ्लैक्सुओसिस में आसवित किए जाने वाला तेल जिसे पूर्वी भारतीय तेल अथवा कोचीन तेल के नाम से भी जाना जाता है; की गुणवत्ता उच्च होती है तथा व्यवसायिक दृष्टि से इसे उपयोगी माना जाता है।

लैमनग्रास की रासायनिक संरचना : एक जी.एल.सी. रिपोर्ट के अनुसार लेमनग्रास के तेल में पाए गए प्रमुख घटक निम्नानुसार हैं–सिट्रल 'ए' (46.60%), सिट्रल 'बी' (27.70%), फेंटेनसॉल (12.80%), फर्नीसाल (3.00%), बोर्नियोल (1.90%), ट्रिफेनाइल एसीट्रेट (0.90%), अल्फा टर्पीनियोल (2.25%), टर्पीनीन (0.50%), बीटा टर्पीनियोल (0.40%) तथा जिरेनियोल तथा नीटॉल (1.50%)। मध्य भारत की स्थितियों में प्राय: 75% से अधिक सिट्रल वाले लैमनग्रास ऑयल को अच्छी गुणवत्ता का तेल माना जाता है।

लैमनग्रास के प्रमुख उपयोग : (क) लैमनग्रास के तेल का उपयोग : लैमनग्रास के पत्तों एवं पौधे के तनें से आसवन विधि से तेल प्राप्त किया जाता है। इसके तेल का प्रमुख उपयोग साबुनों के निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली सुगंधियों, परफ्यूमरी, इत्र, अगरबत्ती आदि में किया जाता है। इसका उपयोग कई दवाइयों के निर्माण के लिए भी किया जाता है। इसके तेल को प्रक्रियाकृत करके उससे अल्फा आयोनेन तथा बीटा आयोनेन तैयार किए जाते हैं। ये आयोनेन बिटामिन 'ए' के निर्माण हेतु महत्वपूर्ण कच्चे माल का कार्य करते हैं।

(ख) लैमनग्रास के पत्तों का उपयोग : लैमनग्रास के सूखे पत्तों का उपयोग हर्बल टी, लैमन टी अथवा ऐसी ही अन्य हर्बल चाय के निर्माण के लिए किया जाता है।

खेत की तैयारी : लेमनग्रास की खेती की पाँच वर्षीय फसल के रूप में की जाती है। अत: खेत की दो से तीन बार डीस्क हैरो से गहरी जुताई की जाती है। जुताई के बाद खेत में प्रति हेक्टेयर 35 टन के लगभग गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद डाला जाता है।

भूमि : लेमनग्रास के रेतीली दोमट तथा हल्की कपासिया मिट्टी सर्वाधिक उपयुक्त होती है। वैसे यह हल्की लैटेराईट मिट्टी में उगाई जाती है। सामान्य पी.एच. वाली भूमि इसकी खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है।

जलवायु : लेमनग्रास के लिए गर्म तथा आर्द्र जलवायु सर्वाधिक उपयुक्त पायी जाती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में इसकी फसल असिंचित फसल के रूप में ली जाती है।

बुआई : लेमनग्रास की बुआई बीज अथवा स्लिप्स के द्वारा की जाती है। खेत तैयार होने पर लकड़ी

की सहायता से 5 से 8 सेमी० की गहराई पर स्लिप्स लगाया जाता है। सिंचाई एवं उपजाऊ क्षेत्रों में रोपाई करते समय कतार से कतार की दूरी 60 सेमी० तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 से 45 सेमी० रखनी चाहिए। लेमनग्रास की बुआई वर्ष में दो बार जुलाई-अगस्त महिने में अथवा फरवरी-मार्च में की जाती है।

किस्में : व्यवसायिक दृष्टि से सीकेपी-25, सुगन्धि, प्रगति, प्रमाण, आरआरएल-16, कृष्णा और कावेरी आदि सर्वाधिक उपर्युक्त प्रजातियाँ हैं।

खाद उर्वरकों की आवश्यकता : प्रति हेक्टेयर 150 किलोग्राम नाइट्रोजन, 40 किलोग्राम पोटाश तथा 40 किलोग्राम फास्फोरस डालने की अनुशंसा वैज्ञानिकों द्वारा की गई है।

इसमें से फास्फोरस तथा पोटाश वर्ष के प्रारम्भ में एक बार डाल देना चाहिए। जबकि नाइट्रोजन का उपनिवेशन प्रत्येक दो महिने में 10-10 किलोग्राम प्रति उपनिवेशन की दर से किया जाना उपयोगी होता है।

सिंचाई : गर्मी के दिनों में प्रत्येक 10 दिन में एक बार सिंचाई करने से पौधे का विकास अच्छा होता है। अगर नियमित अन्तराल पर सिंचाई न की जा सके तो फसल की थोड़ी सुखने की अवस्था में सिंचाई अवश्यक रनी चाहिए।

निदाई-गुड़ाई एवं खरपतवार नियंत्रण : पाँच वर्षीय लेमनग्रास की फसल में खरपतवार की समस्या केवल पहले पाँच से छः महिने तक होती है। और जब एक बार लेमनग्रास का पौध पर्याप्त मात्रा में बढ़ जाता है तो यह खरपतवार को पनपने नहीं देता। इसलिए रोपाई के 40-45 दिनों के बाद एक बार हाँथ से निदाई-गुड़ाई करनी चाहिए।

प्रमुख कीट पतंगे तथा बीमारियाँ : लेमनग्रास चूँकि कठोर प्रवृति का पौधा है। अतः इस पर किसी प्रकार के कीट पतंगों का आक्रमण नहीं होता है, जो इस फसल के उत्पादन को प्रभावित न कर सके। वैसे लेमनग्रास की फसल के प्रमुख रोग लीफ ब्लाईट, लीफ स्पॉट तथा पीत रोग । लीफ ब्लाईट रोग लगने पर पत्तीयाँ पीली पड़ जाती हैं और सुखने लगती हैं। इसके उपचार के लिए मेकोजेब या डायफेलेटान का 0.3% घोल पत्तीयों पर छिड़कना उपयोगी होता है। लीफ स्पॉट के लिए डायथेन एम-45 के 0.3% घोल का 15-20 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करने से रोग नियंत्रित हो जाता है।

फसल की कटाई : बुआई के लगभग 5 से 6 महीने के उपरान्त लेमनग्रास की फसल लगभग 3 से 3.5 फीट तक ऊँची हो जाती है। इस अवस्था में इस घांस को जमीन से 10 सेमी० उपर से काट लिया जाता है। पहली कटाई में काफी कम मात्रा में घास प्राप्त होती है। किन्तु कटाई के उपरान्त फसल तेजी से बढ़ता है। और प्रत्येक 90 से 100 दिनों के अन्तराल पर कटाईयाँ की जाती हैं।

उपज की प्राप्ति : पहली कटाई में प्रति हेक्टेयर मात्र 12 से 15 किलोग्राम तेल प्राप्त होता है। जबकि दूसरे वर्ष के उपरान्त प्रति कटाई औसतन 50 किलोग्राम तेल प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रथम वर्ष में दो या तीन कटाईयों में अधिकतम 100 किलोग्राम तेल की प्राप्ति होती है। जबकि दूसरे वर्ष से औसतन चार कटाईयों में प्रतिवर्ष 200 किलोग्राम तेल प्राप्त होता है।

तम्बाकू (खैनी) के डंठल से कीटनाशी बनाना

एक किलोग्राम खैनी के डंठल को चूर्ण के रूप में बदलकर 10 लीटर पानी में गम्र करते हैं। आधा घंटा खौलने के बाद घोल को ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। उसके बाद घोल को छानकर उसमें कपड़ा धोने वाला साबुन का घोल (2 ग्राम प्रति लीटर) मिलाया जाता है। इस घोल में पानी मिलाकर कुल 80-100 लीटर बनाकर छिड़काव करना चाहिए। इसके छिड़काव से श्वेतमक्खी, लाही, मधुआ, फलीछेदक पिल्लू (हेलियोथिस) को नियंत्रित किया जा सकता है। इसका व्यवहार दो बार से अधिक नहीं करना चाहिए।

अध्याय **12**

गुलाब की वैज्ञानिक खेती

डा० अजीत कुमार पाण्डेय
शोध सहायक, भा.कृ.अनु.परि. का पूर्वी क्षेत्र, पटना

भारतवर्ष में गुलाब के फूल को सर्वश्रेष्ठ फूल माना जाता है तथा इसको फूलों का राजा भी कहा जाता है। सौंदर्य एवं सुगंध में गुलाब का फूलों में प्रथम स्थान है। गुलाब प्रकृति–प्रदत्त एक अनमोल फूल है जिसकी आकर्षक बनावट, सुन्दर आकार, लुभावना रंग एवं अधिक समय तक फूल का सही दशा में बने रहने के कारण इसे अधिक पसंद किया जाता है। यदि गुलाब की खेती वैज्ञानिक विधि से किया जाय तो इसके बगीचे से लगभग पूरे वर्ष फूल प्राप्त किये जा सकते हैं। गुलाब के फूल के नाम आते ही एक रोमांच होता है पहले गुलाब के फूलों का उत्पादन सुन्दरता प्रदर्शन के लिए होता था। गुलाब के फूलों का प्रयोग हमारे यहाँ सौन्दर्य प्रदान के अतिरिक्त लक्ष्मी पूजन, मालायें, गुलदस्ते, इत्र, गुलाब जल तथा गुलकन्द आदि बनाने के साथ शरीर की सजावट हेतु कोट में लगाने हेतु आदि में प्रयोग किया जाता है। मुगलकाल में गुलाब को काफी सम्मान दिया गया। बेगम नूरजहाँ गुलाब की बहुत शौकीन थी। गुलाब के फूल के व्यापक प्रयोग एवं उपयोग को देखते हुए, अब इसे मात्र शौक से ही नहीं वरन् व्यावसायिक दृष्टि से उगाया जा रहा है। गुलाब की खेती मुख्यतः चार प्रकार के उद्देश्यों को लेकर की जाती है : (1) कट फलावर हेतु (2) सजावटी एवं प्रयोजनार्थ, (3) तेल उत्पादन हेतु एवं (4) इत्र के उत्पादन के लिए। गुलाब की खेती में निम्न बातों को ध्यान में रखकर खेती करनी चाहिए ।

LFkku dk puko % ऐसा स्थान जहाँ धूप प्रायः पूरे दिन रहती हो अर्थात् गुलाब के लिए स्थान किसी मकान या बड़े पेड़ के पास नहीं होना चाहिए, क्योंकि छाया में गुलाब के पौधों व जड़ों का उचित विकास नहीं हो पाता है। ये अधिक नमी या अधिक पानी पसन्द नहीं करता है। अतः स्थान ऐसा हो जहाँ पर पौधों के चारों तरफ पानी न रूक सके। चुने हुए स्थान के चारों तरफ तेज हवा को रोकने का प्रबंध होना चाहिए क्योंकि तेज हवाओं से गुलाब के पौधों को नुकसान होता है।

feÍh dk puko : गुलाब की खेती के लिए किसी भी प्रकार की भूमि उपयुक्त होती है। लेकिन दोमट, बलुआर दोमट या मटियार दोमट मिट्टी जिसमें ह्यूमस प्रचुर मात्रा में हो उत्तम होती है तथा जिसका पी. एच. मान 6–7 के मध्य हो साथ ही पौधों के उचित विकास हेतु छायादार या जल जमाव वाली भूमि नहीं हो, ऐसी जगह जहाँ पर पूरे दिन धूप हो अति आवश्यक है। छायादार जगह में उगाने से पौधों का एक तो विकास ठीक नहीं होगा, दूसरे पाउड्री मिल्ड्यु, रस्ट आदि बीमारी का प्रकोप बढ़ जाता है।

tyok; : गुलाब की विभिन्न प्रकार की किस्में पाई जाती है। गुलाब के लिए शीतोष्ण एवं समशीतोष्ण जलवायु सर्वोत्तम है। गुलाब की खेती के लिए 15.5 – 26.5 डिग्री सेन्टीग्रेट हो तब तापक्रम उचित समझा जाता है। कम आर्द्रता वाला सूखा मौसम उपयुक्त होता है। जाड़ा के मौसम में जब तापमान 15–18 डिग्री सेन्टीग्रेट हो, अच्छे पुष्प प्राप्त होते हैं।

Hkfe dh r;kjh : गुलाब को जिस भूमि में लगाना होता है उसे कम से कम पौध लगाने के लिए

एक माह (मई–जून) पहले तैयार कर लेनी चाहिए और खेत को 15 दिनों तक खुला छोड़ दें। ताकि खेत में उपस्थित फफूँदी, हानिकारक कीट एवं खरपतवार नष्ट हो जायें। यदि खेत में दीमक की आशंका हो तो फालीडाल डस्ट 20–25 किलोग्राम प्रति हे0 प्रयोग करे या क्लोरोपायरीफास दवा का प्रयोग कर सकते हैं।

e[; fdLe : गुलाब की किस्मों में मुख्यतः सोनिया, स्वीट हर्ट, सुपर स्टार, सान्द्रा, हैपीनेस, गोल्डमेडल, मनीपौल, बेन्जामिन पौल, अमेरिकन होम, गलैडिएटर किस ऑफ फायर, क्रिमसन गैलरी आदि है।

Hkkjr e fodflr ie[k fdLe – मोहनी, प्रेमा, डेलही प्रिंसेज, पूसा सोनिया, प्रियदर्शनी आदि।

lxfèkr ry gr fdLe – डमस्क रोज, नूरजहाँ आदि।

jkikb : पौधे की रोपाई के लिए उपयुक्त समय अंतिम सितम्बर से अक्टूबर तक का महीना होता है। छोटे आकार वाले पौधे को 30–45 से0 मी0 की दूरी तथा बड़े आकार वाले पौधे को 60–90 से0 मी0 (किस्म के अनुसार) की दूरी पर रोपाई करनी चाहिए। रोपाई के पहले पौधे की सभी पतली टहनियों को काटकर हटा दें, केवल 4–5 स्वस्थ टहनियों को ही रखें तथा इन टहनियों को भी करीब 4–5'' ऊपर से काटने के बाद ही रोपाई करनी चाहिए। 25 से0 मी0 गहरा व 30–40 से0 मी0 व्यास के गढ्ढे खोदें। प्रति गढ्ढे में 8–10 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद मिलाकर भरें।

ioèku@ilkj.k : गुलाब का प्रसारण निम्न तरीकों द्वारा किया जा सकता है।

chtk }kjk : बीजों का प्रयोग गुलाब के पौधों को बाड़ या मूलवृन्त के रूप में उगाने के लिए किया जाता है।

dru }kjk : इस विधि द्वारा गुलाब का प्रसारण मूलवृंत पैदा करने में अधिकांश रूप में किया जाता है। कुछ अधिक ओजस्वी गुलाब चढ़ने या रेंगने वाले तथा पोलीएन्था गुलाब का प्रसारण इस विधि द्वारा भली प्रकार से किया जाता है।

y;fjx }kjk : इस विधि का प्रयोग बढ़ने या रेंगने वाले गुलाबों की संख्या बढ़ाने में सुगमतापूर्वक किया जाता है। टहनियों से शीघ्र जड़े निकालने के लिए हारमोन्स जैसे – आई.वी.ए., एन.ए.ए. इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है।

dye }kjk : गुलाब के प्रसारण के लिए या विधि कठिन तथा कीमती पड़ती है।

dfydk }kjk : यह एक व्यावसायिक तरीका है जो कि भारत वर्ष के मैदानी भागों में किया जाता है। कलिकायन के लिए गुलाब की निम्नलिखित जातियाँ मूलवृन्त के रूप में प्रयोग की जाती है : (1) देशी गुलाब (2) माल्टीफ्लोरा गुलाब, (3) ब्राइर

ikèkk dk vyx djd : वर्षा ऋतु में गुलाब के पौधों के चारों तरफ थोड़ी ऊँचाई में मिट्टी चढ़ा दी जाती है। पौधों के आधार से जब पौधे निकालकर कुछ बड़े हो जाये तो उने जड़ तथा कुछ मिट्टी के साथ उठाकर अलग–अलग लगा दिये जाते हैं।

नई किस्में बीज द्वारा विकसित की जाती है जबकि पुरानी किस्मों का प्रसारण कटिंग, बडिंग, गुटी एवं ग्राफ्टिंग विधि द्वारा किया जाता है, परन्तु व्यवसायिक विधि ''टी'' बडिंग ही है। टी–बडिंग द्वारा प्रसारण करने के लिए बीजू पौधे (रूट स्टाक) को पहले तैयार करना पड़ता है। इसके लिए जुलाई–अगस्त माह में कटिंग लगाना चाहिए, जो कि दिसम्बर–जनवरी तक बडिंग करने योग्य तैयार हो जाती है।

[kkn ,o mo|jd : गुलाब की खेती में खाद बहुत सोच समझ कर देनी चाहिए। खाद हमेशा नई वृद्धि से पहले तथा कृन्तन के बाद पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए तथा खाद के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए। गुलाब की खेती के लिए या अच्छे उत्पादन के लिए गुलाब के खेत में 200–250 क्विंटल सड़ी गोबर की खाद के साथ नाइट्रोजन 100 किलोग्राम, फास्फोरस 50 कि0 ग्रा0 एवं पोटाश 50 कि0 ग्रा0 प्रति हे0 की आवश्यकता होती है। व्यवसायिक स्तर पर खेती करने के लिए 5–6 कि0 ग्रा0 सड़ा हुआ कम्पोस्ट, 10 ग्राम नाइट्रोजन, 10 ग्राम फास्फोरस एवं 15 ग्राम पोटाश/वर्ग मीटर देना चाहिए। आधी मात्रा छँटाई के बाद तथा शेष 45 दिन बाद दें। भूमि की उर्वराशक्ति एवं पौधे के विकास को ध्यान में रखते हुए 50–100 ग्राम गुलाब मिश्रण जो कि बाजार में उपलब्ध है छँटाई के एक सप्ताह बाद दिया जा सकता है। गुलाब मिश्रण निम्नलिखित सूत्र द्वारा तैयार कर सकते हैं – 5 कि0 ग्रा0 मूंगफली की खली, 5 कि0 ग्रा0 हड्डी का चूरा, 2 कि0 ग्रा0 अमोपास (11:48), 1 कि0 ग्रा0 सल्फेट, 2 कि0 ग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट, 1 कि0 ग्रा0 पोटैशियम सल्फेट।

dVkb&NaVkb : यह क्रिया गुलाब के पौधे से अच्छे आकार के फूल प्राप्त करने के लिए अति आवश्यक होती है। अक्टूबर–नवम्बर का महीना इसके लिए उपयुक्त है। छँटाई करते समय यह ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि हाईब्रीड टी पौधे की गहरी छँटाई तथा अन्य किस्मों में हल्की स्वस्थ शाखाओं को छोड़कर अन्य सभी कमजोर एवं बीमारीमुक्त शाखाओं को काटकर हटा दें तथा बची हुई शाखाओं को भी 3–6 आँख के ऊपर से तेज चाकू या सिकैटियर द्वारा काट देना चाहिए। अन्य किस्मों में केवल पतली, अस्वस्थ एवं बीमारीमुक्त शाखाओं को ही काटकर हटायें तथा बची हुई शाखाओं की केवल ऊपर से हल्की छँटाई करें।

foVfjax :– पौधों को छाँटने के तुरन्त बाद विंटरिंग की क्रिया करते हैं। इस क्रिया में 30–45 से0 मी0 व्यास एवं 15–20 से0 मी0 गहराई की मिट्टी को निकालकर 7–10 दिन तक जड़ों को खुला छोड़ देते हैं उसके बाद खाद एवं मिट्टी मिलाकर गड्ढे को भरकर तथा क्यारियाँ बनाकर सिंचाई करनी चाहिए। इससे पौधे को पूर्णतः आराम मिल जाता है जिससे इसमें वृद्धि अच्छी होती है तथा पुष्प भी बड़े आकार के अधिक संख्या में पैदा होते हैं।

fl|pkbZ ,o [kjirokj fudkyuk : सिंचाई करने का मतलब यहाँ मिट्टी को गीला करना नहीं बल्कि नम करना है। गुलाब के पौधे को वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। गर्मी के दिनों में गुलाब के पौधों को आवश्यकतानुसार तीन–चार दिन में हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। तथा जाड़े में 15–20 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। फूल समाप्त होने पर सिंचाई बन्द कर दें। गुलाब की क्यारियों में जब खरपतवार दिखाई दे तो उनकी उथली हुई गुड़ाई करके निकाल देना चाहिए, जिससे गुलाब की जड़ों में वायु संचार होता है। यह क्रिया 10–12 दिनों के अन्तर से नियमित करनी चाहिए।

ÑUru : आलंकृत पौधों में कृन्तन उनकी सुन्दरता बढ़ाने के लिए किया जाता है। लेकिन गुलाब में कृन्तन करने के मुख्य उद्देश्य अग्रलिखित हैं : 1) मरी या सुखी हुई शाखाओं को काटना। 2) रोगग्रस्त टहनियों को दूर करना। 3) पौधों को मजबूत करना।

गुलाब में कृन्तन वर्ष में एक बार करना चाहिए। भारतवर्ष के अधिकतर भागों में वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर अक्टूबर के महीने में गुलाब के पौधे में कृन्तन किया जाना चाहिए। पौधों में कृन्तन करने के बाद पौधों को आराम देने के लिए कुछ समय के लिए सिंचाई बन्द कर देते हैं जिससे उनमें नई वृद्धि तुरन्त न हो सके।

dhM ,o chekfj;k : गुलाब के पौधों में लगने वाले कीड़ों में दीमक, रेड स्केल, जैसिड, लाही (माहो), थिप्स आदि मुख्य हैं। इसकी रोकथाम समय पर करनी आवश्यक होती है। दीमक के लिए थीमेट (10%) दानेदार दवा 10 ग्राम या क्लोरपाइरीफॉस (20%) 2.5–5 मि0 ली0 प्रति 10 वर्ग मीटर की दर से मिट्टी में मिलायें। रेड स्केल एवं जसिड कीड़े की रोकथाम के लिए सेविन 0.3 प्रतिशत या मैलाथियान 0.1 प्रतिशत का छिड़काव करें।

गुलाब की मुख्य बीमारी ''डाइबैक'' है। यह प्रायः छँटाई के बाद कटे भाग पर लगती है जिससे पौधा धीरे–धीरे ऊपर से नीचे की तरफ सूखते हुए जड़ तक सूख जाता है। तीव्र आक्रमण होने पर पूरा पौधा ही सुख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए छँटाई के तुरन्त बाद कटे भाग पर चौबटिया पेस्ट (4 भाग कापर कार्बोनेट + 4 भाग रेड लेड + 5 भाग तीसी का तेल) लगायें एवं 0.1 प्रतिशत मैलाथियान का छिड़काव करें। इसके साथ ही खेत की सफाई अर्थात् निकाई–गुड़ाई तथा खाद–उर्वरक उचित मात्रा में व्यवहार करें एवं पौधों को जल जमाव से बचायें, इससे बीमारी की रोकथाम में मदद मिलती है। इस बीमारी के अलावा ''ब्लैक स्पाट एवं पाउड्री मिल्डयू'' जैसी बीमारियों का प्रकोप भी गुलाब के पौधे पर होता है। इसकी रोकथाम हेतु केराथेन 0.15 प्रतिशत या सल्फेक्स 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करना उपयुक्त होता है।

MVy dh dVkbZ ,o ifdax – जब पुष्प कली का रंग दिखाई दे ताकि कली कसी हुई हो तो सुबह या सायंकाल पुष्प डंठल को सिकेटयर या तेज चाकू से काटकर पानीयुक्त प्लास्टिक बकेट में रखें। इसके बाद 20–20 डंठल का बंडल बनाकर एवं अखबार में लपेट रबर बैंड से बांध दें। कोरोगेटेड कार्डबोर्ड को 100 x 30 से0 मी0 या 50 x 6–15 से0 मी0 के बक्से में पैक कर बाजार भेजना चाहिए।

mit : 2.5 से 5.0 लाख पुष्प डंठल प्रति हेक्टर उपज प्राप्त होता है।

❑

बिहार में फूलों की खेती के अंतर्गत क्षेत्र

क्रम सं०	फसल	क्षेत्रफल (हे०)	उत्पादन (टन)	उत्पादकता (ट०/हे०)
1.	गुलाब	63.55	80.86	1.27
2.	ग्लैडियोलस	64.90	129.8	2.00
3.	गेंदा	269.85	4877.97	18.07
4.	बेली/चमेली	91.60	268.39	2.93
5.	रजनीगंधा	87.45	435.05	4.97
6.	अन्य	113.90	966.91	8.48
7.	कुल	691.25	6548.32	9.47

अध्याय 13

गेंदा की वैज्ञानिक खेती

डा० अजीत कुमार पाण्डेय
शोध सहायक, भा.कृ.अनु.परि. का पूर्वी क्षेत्र, पटना

हमारे देश में गेंदा सबसे प्रमुख व्यवसायिक फूलों में से एक है। इसका उपयोग माला, लरी, गजरा इत्यादि के रूप में किया जाता है। साथ ही भगवान एवं देवी दवताओं की पूजा अर्चना में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसके आलावा बुके बनाने, फूलदान सजाने तथा पुष्प सज्जा के रूप में भी इसका उपयोग किया जा रहा है।

गेंदा फूल की खेती व्यवसायिक रूप से केरोटीन पिगमेंट प्राप्त करने के लिए भी की जाती है। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थों में पीले रंग के लिए किया जाता है। इसके फूल से प्राप्त तेल का उपयोग इत्र तथा अन्य सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में किया जाता है। फूल व्यवसाय में इसका विशिष्ट स्थान है। गेंदा एक आषधीय गुण वाला पौधा है।

औषधीय गुण :

1. ताजे फूलों का रस खूनी बवासीर के लिए बहूत फायदेमंद होता है।
2. फोड़ा तथा खुजली दिनाय में इसकी हरी पत्ती का रस लगाने से फायदा होता है।
3. अपरस की बीमारी में हरी पत्ती का रस लगाने से लाभ होता है।
4. छोटा-मोटा कटने पर पत्तियों को मसलकर लगाने से खून का बहना बंद हो जाता है।
5. गेंदा के हरी पत्ती का रस को कान में डालने से कान दर्द ठीक हो जाता है।
6. गेंदा के हरी पत्ती के रस से मोच या अन्दरूनी चोट में मालिस करने से लाभ होता है।
7. फूलों के अर्क निकालकर सेवन करने से खून शुद्ध होता है।

जलवायु : गेंदा फूल की प्रजातियॉ काफी सहिष्णु होते है। यह शीतोष्ण कटिबन्धीय जलवायु में सालों भी क्रमपूर्वक लगातार लगाया जा सकता है। सभी प्रजातियॉ खुली धूपदार जगहों में लगाना अधिक पसन्द करती है। इसलिए पौधों को रोपने का उपयुक्त समय सितम्बर-अक्टूवर है। इस समय रोपने से उपज ज्यादा प्राप्त होती है।

भूमि की तैयारी : गेंदा की व्यवसायिक रूप से खेती करने के लिए खेत की तीन चार जुताई आवश्यक है। जुताई कर मिट्टी को भुरभुरी बना देना चाहिए। खर-पतवार चुनकर खेत को साफ सुथरा कर देना चाहिए। तथा सुविधानुसार उचित आकार की क्यारियॉ बना दें।

मिट्टी : इसकी खेती सभी प्रकार के भूमि में की जा सकती है। अधिक लाभ के लिए अच्छी उर्वर, गहरी बलुई, दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है। मिट्टी में जल निकासी की व्यवस्था अच्छी होनी चाहिए। पानी लगने से पौधें की बढ़त तथा फूलों की पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। गेंदा फूल की खेती के लिए 7-7.5पी0 एच0 वाली बलुई मिट्टी अच्छी मानी गयी है। 8.5-10.5 पी0 एच0 वाली नमकीन खारी मिट्टी में भी इसकी खेती की जा सकती है।

प्रवर्धन / प्रसारण : गेंदा का प्रसारण बीज एवं कटिंग दोनो विधि से होता है। गेंदे फूल की खेती दो तरीकों से किया जात है। (क) बीज द्वारा (ख) कटिंग द्वारा

(क) बीज द्वारा : एक हेक्टेयर खेती के लिए लगभग 300-400 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है। बिचड़ा तैयार करने हेतु 500 वर्ग फीट जमीन की आवश्यकता होती है। जमीन की अच्छी तरह से जुताई कर दें। बीज को जमीन पर समान रूप से बिखेर दें। उसके बाद सिंचाई कर दें। इसके बाद पुआल से ढक दें 5-10 दिन में बीज का अंकुरण नजर आने पर पुआल हटा देना उचित होगा। जब बीचड़ा 20-25 दिन का हो जाए तथा उसमें 3-4 पत्तियॉ नजर आने लगे तो सावधानी पूर्वक उखाड़कर खेतों में लगाया जा सकता है। (1000 वर्गफीट में बीज दर उगाने हेतु खाद की आवश्यकता। कम्पोस्ट -50 किलोग्राम, यूरिया -5 किलोग्राम, सिंगल सुपर फास्फेट-10 किलोग्राम नीम खली - 5 किलोग्राम।

(ख) कटिंग द्वारा : इसके लिए स्वस्थ एवं अच्छे गुणवाले मातृ पौध का चुनाव कर लें तथा उनकी शाखाओं के अग्रभाग जिसकी लंबाई 3-4'' हो तथा लगभग 4-5 गिरट हो, को काट कर कटिंग लगायें। कटिंग को सेराडिक्स, रूटाडिक्स या अन्य उपयुक्त हारमोन्स से उपचारित कर लगाने से जड़ें जल्द, स्वस्थ्य एवं ज्यादा संख्या में निकलती है। एक हेक्टेयर के लिए करीब 40000 कटिंग की आवश्यकता होती है।

प्रजातियॉ : मुख्यत: गेंदा फूल की दो प्रजातियॉ है।

(क) अफरीकी मेरी गोल्ड - इसके पौधे एवं फूल दोनों बड़े आकार के होते हैं।

(ख) फ्रांसीसी गेंदा : इसके पौधे एवं फूल दोनो अपेक्षकृत छोटे आकार के होते हैं। इसमें अधिक शाखायें नहीं होती है किन्तु इसमें इतने अधिक पुष्प आते है। कि पूरा का पूरा पौधा ही पुष्पों से ढंक जाता है। इस प्रजाति के कुछ उन्नत किस्मों में रेड ब्रोकेट, कपिड मेलो, बोलरो, बटन स्कोच इत्यादि है।

खाद एवं उर्वरक : अच्छी उपज हेतु खेत की तैयारी से पहले 200 कि0 कम्पोस्ट प्रति हेक्टेयर की दर से मिट्टी में मिला दें। तत्पश्चात 120-160 किलो नेत्रजन 60-80 किलो फास्फोरस एवं 60-80 किलोग्राम पोटाश का प्रयोग प्रति हेक्टेयर की दर से करें। नेत्रजन की आधी मात्रा एवं फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा खेत की अन्तिम जुताई के समय मिट्टी में मिला दें, नेत्रजन की शेष आधी मात्रा पौधा रोप के 30-40 दिन के अन्दर प्रयोग करें।

रोपाई : गेंदा फूल खरीफ, रबी, जायद तीनों सीजन के बाजार की मांग के अनुसार उगाया जाता है। लेकिन इसके लगाने का उपयुक्त समय सितम्बर-अक्टूबर है विभिन्न मौसम में इसकी दूरी अलग-अलग होती है जो निम्न है।

(1)	खरीफ (जून से जुलाई)	60 × 45 से॰ मी॰
(2)	रबी (सितम्बर से अक्टूबर)	45 × 45 से॰ मी॰
(3)	जामद (फरवरी से मार्च)	45 × 30 से॰ मी॰

सिंचाई : मौसम के अनुसार 5-10 दिनों के अन्तराल पर गेंदा में सिंचाई करनी चाहिए।

(क)	फरवरी माह में रोपे गये पौधे	- मार्च से जून तक सप्ताह में दो बार।
(ख)	जुलाई माह में रोपे गये पौधे	- आवश्यकता अनुसार।
(क)	नवम्बर माह में रोपे गये पौधे	- दिसम्बर से मार्च तक माह में एक बार। एवं मार्च से जून तक सप्ताह में दो बार।

सिंचाई के लिए पानी का इस्तेमाल आम बात है, लेकिन बेहतर यही होता है कि पानी के साथ ताजा गोबर मिलाया जाए। गोबर मिले पानी से सिंचाई करना व्यवसायिक उत्पादन के नजरिए से बढ़िया है। ऐसे

पानी का इस्तेमाल दो दिनों के अंतर में किया जाना चाहिए। पौधे में कलियॉं लगने के दौरान सिंचाई में खास सावधानी बरतने की जरूरत पड़ती है।

पिंचिंग : रोपाई के 30-35 दिनों के अन्दर पौधे की मुख्य शाकीय कली (उपरी शीर्ष) को तोड़ देना चाहिए इससे शाखायें ज्यादा निकलती है एवं फूल भी अधिक संख्या में प्राप्त होते है।

खरपतवार नियंत्रण : 15-20 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार निकाई-गुड़ाई करनी चाहिए। इससे भूमि में हवा का संचार ठीक ढंग से होता है एवं वांछित खरपतवार नष्ट हो जाते है।

कीट व्याधि : रेड स्पाइडर, माइट, लीफ हापर, इसे काफी नुकसान पहुॅचाते हैं तथा उसके रोकथाम के लिए मैलाथिमान 0.1 प्रतिशत का डाइकोफॉल 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें।

रोग नियंत्रण : गेंदा में मौजैक, फूटराट, चूर्णी फफूंद मुख्य रूप से लगता है। मौजैक वाले पौधे को उखाड़कर मिट्टी तले दबा दें एवं गेंदा में कीटनाशक दवा का छिड़काव करें जिससे मोजैक के विषाणु स्थानान्तरित करने वाले कीट का निमंत्रण हो एवं इसका विस्तार दूसरे पौधे में न हो। चूर्णी फफूंद के नियंत्रण हेतु 0.2 प्रतिशत गंधक का छिड़काव करें, एवं फूटराट के नियंत्रण हेतु इण्डोफिल एम-45 0.25 प्रतिशत का 2-3 बार छिड़काव करें।

उत्पादन : गेंदा का उत्पादन उस की किस्म पर निर्भर करता है। इसके साथ ही मौसम भी उत्पादन में मायने रखता हे। अफरीकन किस्म का गेंदा प्रति हेक्टेयर 15-16 टन और हाईब्रिड किस्म का लाल गेंदा प्रति हेक्टेयर 10-12 टन होता है। सर्दी के मौसम में गेंदा का प्रति हेक्टेयर 16 टन, बारिश के मौसम में 20-22 टन और गर्मी के दिनों में 10-12 टन होता है।

फूल की तोड़ाई : रोपाई के 60 से 70 दिन पर गेंदा में फूल आता है जो 90-100 दिनों तक आता रहता है। फूल को तोड़ने में खास सावधानी बरतने की जरूरत होती है, जिस दिन फूल तोड़ना हो उस के पहले दिन शाम को पौधे की सिंचाई करने के बाद अगले दिन सुबह फूल तोड़ लेना चाहिए। फूल तोड़ने का काम हाथों से खींच कर नहीं करना चाहिए। इससे फूलों को नुकसान होता है। इसके लिए कैंची का इस्तेमाल करना चाहिए। फूल को तोड़ने के बाद उसे छाया में रखना चाहिए। फूल को थोड़ा डंठल के साथ तोड़ना श्रेयस्कर होता है।

फूलों की पैकिंग : फूल का कार्टून जिसमें चारो तरफ एवं नीचे में अखबार फैलाकर रखना चाहिए एवं उपर से फिर अखबार से ढंक कर कार्टून बन्द करना चाहिए।

प्रति हेक्टेयर खर्च एवं आमदनी :

प्रति हेक्टेयर खर्च	- रु० 50,000.00
प्रति हेक्टेयर आमदनी	- रु० 90,000.00
प्रति हेक्टेयर शुद्ध लाभ	**- रु० 40,000.00**

❑

नीम की पत्तियों से कीटनाशी बनाना

नीम की पत्तियों से एक बाल्टी को भरा जाता है। बाल्टी को पानी से भरकर चार दिनों के लिए छोड़ दिया जाता है। पाँचवें दिन पत्तियों को अच्छी तरह से मिलाकर छान लिया जाता है। उसके बाद, छिड़काव करने से पिल्लू, भृंग, फनगा, दीमक को नियंत्रित किया जा सकता है।

अध्याय 14

रजनीगंधा की वैज्ञानिक खेती

डा० एच० पी० मिश्रा
सेवा निवृत, विभागध्यक्ष, उद्यान विभाग, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा समस्तीपुर

रजनीगंधा को अंग्रजी एवं जर्मन में ट्युबरोज, उर्दू में गुल-ए-शब्बों, फ्रेंच में ट्युबेरेयुज, स्पैनिस एवं इटैलियन में ट्युबेंरोजा कहते हैं। भारत में कहीं-कहीं पर इसे रूंजूनी एवं सुगंधराज के नाम से भी जाना जाता है। इसकी अत्पत्ति मध्य अमेरिका है जहां से यह विभिन्न देशों में पहुँचा।

यह बहुउपयोगी पुष्प है, जिस कारण व्यावसायिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। फूल सफेद एवं सुगन्धित होते हैं जो कि सभी के मन को मुग्ध कर लेते हैं। रजनीगंधा के डंठलयुक्त पुष्प/कटे फूल गुलदस्ता बनाने तथा मेज एवं भीतरी पुष्प सज्जा के लिए मुख्य रूप से प्रयोग किये जाते हैं इसके अलावा बिना डंठल का पुष्प को माला, गजरा, लरी एवं वेनी बनाने तथा सुर्गंधित तेल तैयार करने के लिए उपयोग किया जाता है। इसके फूल तथा फूल से बने सुगंधित तेल की खाड़ी देशों में बहुत अधिक मांग है। अतः यदि इसकी खेती वैज्ञानिक ढ़ंग से करके फूल एवं तेल का निर्यात किया जाय तो विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है।

पत्तियाँ पतली लम्बी तथा भूमि की तरु झुकी हुई धनुषाकार आकृति की होती हैं। स्पाइक 90-100सें. मी. लम्बी होती है। प्रत्येक स्पाइक में 12-20 जोड़े तक फूल रहते हैं। फूल का आकार कुप्पी की तरह होता है।

प्रबर्धन : यह कन्द से तैयार किया जाने वाला पौधा है।

किस्म : फूल के आकार-प्रकार तथा संरचना एवं पत्ती के रंग के अनुसार रजनीगंधा की किस्में को चार वर्गो में विभाजित किया गया है।

1. **एकहरा :** फूल सफेद रंग के होते हैं तथा पंखुड़ियाँ केवल एक ही पंक्ति में होती है। किस्म-शृंगार, प्रज्जवल, लोकल।
2. **डबल :** इसके फूल भी सफेद रंग के ही होते हैं परन्तु पंखुड़ियों का उपरी शिरा हल्का गुलाबी रंगयुक्त होता है। पंखुड़ियाँ कई पंक्ति में सजी होती हैं जिससे फूल का केन्द्र विन्दु दिखाई नहीं देता है। किस्म-सुवासिनी, वैभव, लोकल।
3. **अर्थ डबल :** इस वर्ग के फूल में पंखुड़ियाँ एक से अधिक पंक्ति में होती हैं परन्तु फूल का केन्द्र विन्दु दिखाई देता है। लोकल किस्में।
4. **धारीदार :** इस किस्म के फष्प सिंगल या डबल होते हैं परन्तु पत्तियों का किनारा सुनहरा या सफेद होता है। पत्तियों के आकर्षक रंगों एवं विभिन्नता के आधार पर स्वर्ण रेखा एवं रजत रेखा नामक दो किस्में विकसित की गयी हैं।

भूमि : रजनीगंधा की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए भूमि का चुनाव करते समय दो बातों पर सबसे पहले धयान देना चाहिए। पहला खेत छायादार जगह में न हो अर्थात सूर्य का पूर्ण प्रकाश मिलता हो दूसरा जल निकास का उचित प्रबन्ध हो। यद्यपि इसे लगभग हर तरह की मिट्टी में उगाया जा सकता है परन्तु बलुआर दोमट, दोमट या मटियार दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।

खेत की तैयारी : खेत का चुनाव करने के बाद उसे समतल कर लें फिर एक बार मिट्टी पलटने

वाले हल से तथा 2-3 बाद देशी हल से जुताई करके पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरा बना लें। चूँकि यह कन्द वाली फसल है इसलिए कन्द के समुचित विकास हेतु खेत की तैयारी ठीक ढ़ंग से होनी चाहिए। खेत को खर-पतवार रहित रखें तथा निकाई करते समय सावधानी बरतें क्योंकि इसमें कन्द बहुत अधिक संख्या में निकालते हैं।

कन्द की रोपाई : कन्द रोपने का उपयुक्त समय मार्च-अप्रैल होता है। 2 से.मी. व्यास या इससे बड़े आकार वाले कन्द का चुनाव रोपने के लिए करना चाहिए। किस्म तथा फसल की अवधि (एक, दो या तीन वर्ष) के अनुसार 1-2 कन्द को प्रत्येक स्थान पर लगाना चाहिए। सिंगल किस्मों के कन्दों को 15-20 से. मी. पौधे से पौधा तथा 20-30 से.मी. लाइन से लाइन की दूरी पर जबकि डबल किस्म को 20-25 से.मी. की दूरी पर तथा 5 से.मी. की गहराई पर रोपना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : एक वर्गमीटर की क्यारी में 3-3.5 कि.ग्रा. सड़ा हुआ कम्पोस्ट, 20-30 ग्राम नाइट्रोजन, 15-20 ग्राम फासफोरस तथा 10-20 ग्राम पोटाश देना लाभदायक होता है। नाइट्रोजन तीन बार में बराबर-बराबर मात्रा में देना चाहिए। एक तो रोपने के पहले, दूसरा 60 दिन के बाद (3-4 पत्ती होने पर) तथा तीसरी मात्रा फूल निकलने पर देनी चाहिए। कम्पोस्ट, फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा को कन्द रोपने के पहले ही व्यवहार करना चाहिए।

सिंचाई : गर्मी में एक-एक सप्ताह के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए। बरसात में वर्षा नहीं होने पर तथा अन्य मौसम में नमी को देखते हुए आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। सही मात्रा में एवं सही समय पर सिंचाई करने से फूल की ऊपज में संतोषजनक वृद्धि होती है।

अन्य देख-रेख : खाद एवं उर्वरक का उपयेाग रजनीगंधा के पौधे सही ढ़ंग से कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि खेत में खर-पतवार दिखाई देते ही निकाई करें। निकाई करने से मिट्टी भी ढ़ीली हो जाती है जिससे वायु संचार ठीक होता है तथा कन्द एवं जड़ों का विकास भी सही रूप में होता है। प्रत्येक कन्द से 1-3 स्पाइक तक प्राप्त होती है। तीन वर्ष के बाद प्रत्येक पौधे से 25-30 कन्द छोटे-बड़े आकार के प्राप्त होते हैं। स्पाइक को यदि काटा ना जाय तो 18-22 दिन तक खेत में पुष्प खिलते रहते है। ऐसा देखा गया है कि सिंगल किस्म के फूल लगभग सभी मौसम में पूर्णत: खिल जाते हैं फलस्वरूप सुगंध भी मिलती रहती है जबकि डबल किस्म के फूल के पूर्णत: न खिलने के कारण सुगंध बहुत कम या नहीं के बराबर रहती है। व्यावसायिक दृष्टि से उत्पादन करने हेतु सिंगल किस्म ही अधिक उपयुक्त पायी गयी है।

फूल को चुनना/तोड़ना एवं स्पाइक की कटाई : फूल को यदि माला, गजरा, वेनी आदि बनाने के लिए तोड़ना है तो सुबह या सायंकाल का समय उपयुक्त रहता है। कटे फूल के रूप में 50 या 100 स्पाइक के बण्डल बनाकर बाजार में आपूर्ति किया जाता है। यदि दूर भेजना है तो स्पाइक का सबसे नीचे वाला फूल खिलने के पहले ही काट लें परन्तु नजदीक की बाजार हेतु 2-3 फूल खिलने पर काटें। स्पाइक लम्बी होने पर मूल्य अधिक मिलता है इसलिए यथासम्भव भूमि के नजदीक से तेज चाकू द्वारा डंठल काटकर प्लास्टिक के बकेट जिसमें 3'-4' पानी हो, में रखना चाहिए।

ऊपज : ताजा फूल प्रति हेक्टेयर लगभग 80-100 क्विंटल/वर्ष प्राप्त होता है जबकि सुगंधित द्रव्य के रूप में कंकरीट 27.5 कि.ग्रा. प्रति हेक्टयर तक प्राप्त किया जा सकता है जिससे 5.500 कि.ग्रा. ऐबसोल्युट (शुद्ध) सुगंधित द्रव्य प्राप्त होता है।

कीड़े एवं बीमारियाँ : इस फूल में बीमारी का प्रकोप तो नहीं पाया जाता है परन्तु पानी लगने वाले स्थान पर फफूँद की बीमारी लगती है जो कि पत्ती व फूल को प्रभावित करती है। इससे बचाव के लिए ब्रैसीकाल का छिड़काव (2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोलकर) करें।

कीड़ों में मुख्य रूप से थ्रिप्स (बहुत छोटा कीड़) तथा माइट का आक्रमण होता है जो कि पत्ती तथा फूल दोनों को बुरी तरह प्रभावित करते हैं। थ्रिप्स से फसल की रक्षा हेतु नूवान 0.05 प्रतिशत या सेविन 0. 3 प्रतिशत का छिड़काव 10-15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए। माइट के लिए केलथेन (डाइकोाल) नामक दवा का 0.2 प्रतिशत की दर से छिड़काव लाभकारी होता है। कभी-कभी कैटरपिलर पत्तियों एवं फूल को खाकर नुकसान पहुँचाते है अत: इनके आक्रमण होने पर नुवान या रोगर का छिड़काव करें।

अध्याय 15

ग्लैडियोलस की वैज्ञानिक खेती

संजय कुमार
विषयवस्तु विशेषज्ञ, जिला कृषि कार्यालय, समस्तीपुर

ग्लैडियोलस फूल अपनी सुन्दरता, डंठल में फूलों का एक-एक करके खिलना, विभिन्न आकार-प्रकार एवं रंगों तथा फूलदान में अधिक समय तक सही दशा में है रहने के कारण मुख्य स्थान रहता है व्यावसायिक दृष्टि से इसे कटे फूल उत्पादन हेतु उगाया जाता है, परन्तु उद्यान को सुन्दर बनाने के लिए क्यारियों एवं गमलों में भी इसे लगाया जाता है। कटे फूल को गुलदस्ता, मेज सज्जा एवं भीतरी सज्जा के लिए मुख्य रूप से उपयोग किया जाता है।

ग्लैडियोलस की मुख्य रूप से दो तरह की किस्में होती हैं, एक बड़े फूलों वाली (Large Flowered) तथा दूसरी छोटे फूलों वाली बटर फ्लाई (Butter fly or Miniature) बहुत से किस्मों में फूल के बीच का भाग जिसे ब्लाच (Blotch) कहते हैं दूसरे रंग का होता है जिससे इसकी सुन्दरता बढ़ जाती है।

मुख्य किस्में

व्यावसायिक रूप से उत्पादन हेतु : फ्रेंडशिप व्हाइट, फेंडशिप पिंक, वाटरमेलन पिंक, लिली आसकर, जैकसन, विस-विस, यूरोवीजन।

भारत में विकसित प्रमुख किस्में : आरती, अप्सरा, अग्नि रेखा, सपना, शोभा, सुचित्रा, मोहनी, मनोहर, मयूर, मुक्ता, मनीषा, मनहार।

प्रवर्धन : ग्लैडियोलस का प्रवर्धन कन्द (corm) से होता है कन्द लगभग 3-5 सेमी० व्यास का होना चाहिए। लट्टूनुमा आकार वाले कन्द चिपटे कन्द की अपेक्षा उत्तम पाया गया है एक कन्द से कई छोटे-छोटे कन्द जिन्हें कारमेल (Carmel) कहते हैं, तैयार होते हैं परन्तु ये इतने छोटे होते हैं जो कि रोपने योग्य नहीं रहते हैं। अत: इन्हें 2-3 बार रोपाई करनी पड़ती है उसके बाद ही सही आकार के कन्द प्राप्त हो पाते हैं।

कन्द रोपन का उपयुक्त समय सितम्बर एवं अक्टूबर माह है। खुदाई के बाद कन्द लगभग तीन माह तक सुषुप्तावस्था में रहते हैं अत: सुषुप्तावस्था में इनकी रोपाई न करें अन्यथा इनका अंकुरण नहीं होगा। रोपाई करने के पहले भूरे रंग के बाहरी छिलके को हटाकर 0.2 प्रतिशत कैप्टान या 0.1 प्रतिशत बेनलेट के घोल में 30 मिनट तक उपचारित करने के बाद ही कन्दों की रोपाई करनी चाहिए। उत्तम होगा यदि कन्दों की अंकुरित कराके रोपाई करें इसके लिए कन्द को अंधेरे एवं गर्म स्थान पर बालू भरे ट्रे में लगाकर रखना चाहिए। बालू को नम बनाये रखें तथा ट्रे को पालीथीन से ढँक दें। व्यावसायिक खेती हेतु कन्दों को 20-30 × 15-20 या 25 × 15 सेमी० की दूरी पर 5-10 सेमी० गहरई पर रोपाई करें। प्रदर्शनी हेतु स्पाइक तैयार करने के लिए बड़े आकार के कन्द (5.0-7.5 सेमी० व्यास के) को 30 × 20 सेमी० पर रोपना चाहिए। यदि कन्द की रोपाई 20-25 दिन के अन्तराल पर कई बार में की जाय तो स्पाइक लगातार अधिक समय तक मिलती रहती है।

खाद एवं उर्वरक : ग्लैडियोलस की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु प्रति वर्ग मीटर भूमि में 2.0-2.5

किग्रा० कम्पोस्ट, 15-30 ग्राम नाइट्रोजन, 10-15 ग्राम फासफोरस व 15-20 ग्राम पोटाश देना चाहिए। कम्पोस्ट, फासफोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नाइट्रोजन की चौथाई मात्रा रोपाई के समय देनी चाहिए, जबकि शेष नाइट्रोजन की मात्रा को तीन बार में बराबर–बराबर मात्रा में प्रथम पौधे में 3-4 पत्तियाँ आने पर, दूसरी बार स्पाइक निकलते समय तथा अन्तिम बार जब फूल निकलना समाप्त हो जाय। अन्तिम बार नाइट्रोजन की मात्रा कन्दों की सही वृद्धि के लिए देते हैं।

अन्य क्रियाएँ : खेत को खरपतवार से मुक्त रखे साथ ही जड़ पर दोबार मिट्टी चढ़ायें एक तो तीन–चार पत्ती की अवस्था पर दुसरे बार जब स्पाइक निकलने लगे एवं मुख्य रूप से स्पाइक निकलने लगे तो आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। मुख्य रूप से स्पाइक निलकने समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए।

पौधे को सहारा देना : जब स्पाइक (फूल की डंढल) निलकने लगे उसी समय बांस की फट्ठी का पौधों से स्पाइक न तो टेढ़ी–मेढ़ी हो सके न ही जमीन की तरफ झुके या गिरे।

स्पाइक की कटाई : सबसे नीचे वाले फूल का रंग दिखाई देते ही तेज चाकू या सिकैटियर की मदद से सपाइक काटने के तुरन्त बाद पानीयुक्त बाल्टी में सपाइक को रखें।

फूलदान के स्पाइक सजाना : फूल दान को साफ करने के बाद उसमें स्वच्छ पानी भरकर स्पाइक को सजायें। दुसरे दिन से रोजाना या एक दिन के अन्तराल पर स्पाइक को नीचे से 1.5 सेमी० काटते रहें तथा पानी बदलकर साफ पानी भर दें अनुकूल दशा में स्पाइक के सभी फूल धीरे-2 खिल जाते है तथा कम से कम एक हाते तक आसानी से फूलदान में रखा जा सकता है।

कन्द की खुदाई एवं भंडारण : यदि पौधे से स्पाइक को नहीं काटा जाता है और उसे क्यारी या गमले में ही सुन्दरता प्रदान करने के लिए पूर्णत: खिलने देते हैं तो यह ध्यान रखें कि पौधे पर बीज न बनने पाये अन्यथा कन्द को नुकासन पहुँचता है। जब पत्ती पीले या भूरे रंग की हो जाय एवं सूखना शुरू करे तो कन्द एवं कारमेल को खुरपी की सहायता से खुदाई करें। कन्द को खोदने के बाद 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन/कैप्टान या 0.1 प्रतिशत बेनलेट घोल से 30 मिनट तक उपचारित कर के छायादार स्थान पर 2-3 सप्ताह तक सुखाकर लकड़ी की पेटी या जूट के बैग में रखकर हवादार एवं ठंड कमरे में भंडारित करें। यदि कोल्ड स्टोरेज में 40°C पर भंडारित किया जाय तो यह सर्वोत्तम होगा।

कीड़े एवं बीमारियाँ : ग्लैडियोलस को थ्रिप्स कीड़ा से ज्यादा नुकसान होता है इसके लिए 0.3 प्रतिशत सेविन या 0.1 प्रतिशत मालाथियान या 0.15 प्रतिशत नुवाक्रान के घोल का छिड़काव 15-20 दिन के अन्तराल पर करें। भंडारण के समय भी कभी–कभी ये कीड़े कन्द को छति पहुँचाते हैं अत: भंडारण के समय भी आवश्यकतानुसार 2-3 छिड़काव करना लाभदायक है।

ग्लैडियोलस में मुख्य रूप से भूमि जनित दो बीमारियाँ स्ट्रोमेटीनिया ग्लैडियोली और फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम का साधारणतया प्रभाव पाया जाता है। इसके प्रभाव से कन्द सड़ जाते हैं इस बीमारी से बचाव के लिए बीमारी रहित कन्द का चुनाव करें तथा कन्द को रोपने के पहले 0.2 प्रतिशत कैप्टान से या गर्म पानी में 48° से० 30 मीटर तक उपचारित करना चाहिए।

खड़ी फसल में बीमारी से बचाव हेतु 0.25 प्रतिशत इण्डोफिल एम–45 का छिड़काव करें।

उपज : उचित फसल प्रबंधन से एक हेक्टेयर क्षेत्रफल से लगभग 2-2.5 लाख पुष्प डंठल प्राप्त की जा सकती है।

❑

अध्याय 16

पान की वैज्ञानिक खेती

डा० उमा शंकर सिंह
सूत्रकृमि विभाग, राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर

पानएक बहुवर्षीय, सदाबहार, लत्तरदारबेल है जिसकी खेती नगदी फसल के रूप में बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में सघन रूप से तीन हजार पाँच सौ हेक्टेयर भूमि पर की जाती है। उत्तरी बिहार में एक बार पान लगाकर बीस से पच्चीस वर्षों तथा दक्षिणी बिहार में दोवर्षों तक अच्छी उपज प्राप्त कीजा सकती है। इस फसल से पच्चास हजार रुपये प्रति हेक्टेयर शुद्ध वार्षिक आय प्राप्त की जा सकती है। पान की उत्पत्ति स्थल मलेशिया हें इसका प्रयोग प्राचीन काल से देवताओं के हवन पूजन, अतिथि सम्मान देने हेतु एवं औषधि के रूप में किया जाता है। इसके पत्ते में विटामिन बी, विटामिन सी, कैलशियम, लोहा और फॉसफारेस के अतिरिक्त प्रोटीन, वसा, कार्बोहाईड्रेट, रेशा एवं खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। इसमें कुछ अनिवार्य एमिनो अम्ल यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं सिर्फ लाईसीन, हिस्टीडीन एवं आर्जिनीन को छोड़कर जो शरीर के लिये लाभदायक हात हैं। इसमें अनिवार्य तेल की मात्रा 0.7 से 2.6 प्रतिशत होती है, जिसके कारण पत्तियों में सुगन्ध होते है। धर्म पुराणों एवं आर्युवेदिक ग्रन्थ 'चरक संहिता' में पान को अमृत के रूप में स्वीकार कर इसकी महत्ता के आधार पर महोपयोगी माना गया है।

जलवायु : पान का उत्पादन उष्ण जलवायु में छायादार नम स्थानों में होता है। अपने राज्य की जलवायु अधिक गर्म एवं ठंडी होने के कारण इसकी खेती खुले खेतों में नहीं की जा सकती है। इसलिये इसे कृत्रिम मंडप के अंदर उगाया जाता है, जिसे बरेजा/बरेठ कहते हैं।

भूमि का चुनाव : पान का बरेजा बनाने के लिये ढालू जमीन जहाँ पानी निकास की अच्छी सुविधा हो, अनुकूल होती है। प्राय: तालाबों की मेड़ों पर या ऊँचे स्थानों परजहाँ वर्षा का पानी इकठ्ठा नहीं होता है, इसकी फसल उगाने हेतु उपयुक्त होती है। परन्तु दोमट काली मिट्टी सर्वोत्तम पायी गयी है।

बरेजा बनाने की विधि : जिस भूमि पर बरेजा बनाना होता है वहाँ सीधी लाईन में चूना डाल देते हैं। इन लाईनों में एक मीटर के अंतर से बाँस, 3-4 मीटर लम्बे पंक्तिबद्ध गाड़ देते हैं। 2.5 मीटर ऊँचाई पर बाँस की कमची से लम्बाई और चौड़ाई में बाँधकर छप्पर बना देते है।। ऊपर पतली खर/पुआल से छवा देते हैं और खर/पुआल हवा में नहीं उड़ सके इसके लिए छोटी-छोटी बाँस की कमचियों को खर/पुआल के ऊपर रखकर बाँध देत हैं। इस मंडप के चारों ओर छत की ऊँचाई के बराबर इकरी या खर की टाटियाँ बाँस के सहारे बाँध देते हैं। इस तरह बरेजा चारों ओर से बन्द रहता है तथा सामने आने-जाने के लिये एक दरवाजा रखते है।।

भूमि की तैयारी : बरेजा तैयार करने के बाद जमीन को अच्छी तरह साफ कर खुदाई करके पानी से सिंचाई कर देते हैं। 3-4 दिन बादजब जमीन सूख जाये, तब उसे भुरभुरी कर लेते हैं तथा उससे कंकड़, पत्थर, घास एवं कचरा निकालदिया जाता है। बाँस की लाईन के सहारे करीबन 10 सेन्टीमीटर ऊँची और 50 सेमी० चौड़ी मेड़ बना लेते हैं। इसी मेड़ पर पान की बेल का रोपण किया जाता है।

बोने का समय एवं विधि : उत्तरी बिहार में पान की रोपाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के द्वितीय सप्ताह और दक्षिणी बिहार में मई माह के अन्त में की जाती है। उत्तरी बिहार में रोपण के लिए बल की एक गाँठ वाला टुकड़ा, जिसके साथ एक स्वच्छ पत्ती लगी रहती है, जबकि दक्षिणी बिहार में मगही प्रभेद की बेलें 7-8 गाँठों वाली, का उपयोग होता है। दो बाँस के दोनों ओर 15 सेमी० की दूरी पर कतारबद्ध लगाते हैं। गाँठ को मिट्टी में गाड़कर तिरछा रख उसके ऊपरगीली मिट्टी के कणों के बीच की हवा निकल जाय और गाँठ मिट्टी के सम्पर्क में आ जाये। रोपनी के बाद बेलों को पानी से भिंगोया हुआ खर/पुआल से ढ़ँक देते हैं। इस पर दिन में 2-3 बार हल्की सिंचाई करते हैं। एक हेक्टेयर भूमि में करीबन 1,50,000 बलें लगती हैं।

बेल का चुनाव एवं उपचारित करने की विधि : रोपनी के लिए बीज स्वस्थ एवं सुडौल बेल के एक मीटर उपरी भाग से चुनना चाहिए। यदि किसी प्रकार के धब्बे व रोग के लक्षण दिखाई दे तो उन्हें बोने हेतु प्रयोग न करें। बेलों की रोपनी से पूर्व बोर्डो मिश्रण का एक प्रतिशत घोल तथा प्रति चार लीटर घोल में एक ग्राम स्ट्रेप्टोसाईक्लीन मिला दें तथा इस घोल में बेल के कटे भाग को 30 मिनट तक अवश्य डुबोयें। इस प्रकार उपचार करने में फफूँदजनित तथा जीवाणुजनित रोगों के प्रभाव से बचा जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक : पान के सालोंभर अच्छी पैदावार के लिए 100 किलोग्राम नाइट्रोजन, 100 किलोग्राम स्फुर और 100 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर के दर से व्यवहार करना चाहिए। यदि पोषक तत्व की पूर्ण मात्रा जैविक खाद के रूप में यानी सरसों, अण्डी या नीम की खल्ली को प्रयोग करें तो अति उत्तम है। ऐसा संभव नहीं हो तो कम से कम पोषक तत्व की आधी मात्रा कार्बनिक और आधी अकार्बनिक खाद के रूप में व्यवहार करें। रसायनिक खाद की मात्रा को चार बराबर भागों में बाँटकर तीन माह के अन्तराल पर डालें। स्फूर और पोटाश बोने से पहले करीबन 15 सेमी० गहरी नालियाँ बनाकर भर देते हैं और नालियों को मिट्टी से ढ़ँकते हैं ताकि बेल के सम्पर्क में न आये अन्यथा बेल मर जाती है। खाद देने के बाद भरपूर सिंचाई करना चाहिए। लगभग 20-25 क्विंटल खल्ली/हेक्टेयर/वर्ष के हिसाब से दी जाती है।

किस्में : उत्तरी बिहार में पान की बंगला किस्म तथा दक्षिणी बिहार में बंगला एवं मगही किस्में लगाते हैं। मगही पान अन्य देशों के लिये निर्यात किया जाता है।

सिंचाई : बिहार में पान की फसल के लिए सिंचाई मिट्टी के बड़े घड़ों से की जाती है।

(क) नई रोपण को दिन में दोबार हल्की सिंचाई करते हैं।

(ख) वर्षा के मौसम में यदि अधिक समय तक पानी नहीं पड़ता है तो सिंचाई करते हैं।

(ग) फरवरी, मार्च एवं अप्रैल माह में पान की बाढ़ अधिक होती है इसलिये इन दिनों भरपूर सिंचाई करना आवश्यक है।

(घ) अधिक ठंढ पड़ने पर भी पान की सिंचाई करना चाहिए ताकि पान की पत्तियाँ न झड़ें।

बेल चढ़ाना : रोपण के बाद बेलों में जड़ें निकल आती हैं और नई बेल बढ़ने लगती है तब बेलों को इकड़ी या बाँस की पतली कमची बेल के पास गड़ाकर बाँध देते हैं ताकि इसके सहारे ऊपर चढ़ती जाये। यह कार्य पूरे वर्ष चलता रहता है। नवम्बर माह तक बेल की बाढ़ बरेजे की छत छूने लगे तो छत के बंधन काटकर पूरे छप्पर को उठाकर ऊँचा कर देते हैं।

बेल उतारना : बुआई के समय अर्थात् जुन जुलाई में यदि बरेजों की बेल स्वस्थ रहती है तो आधी बेल तोड़कर रोपण हेतु उपयोग कर लेते हैं और शेष आधी बेल को जमीन में गड़ा देते हैं। प्रत्येक गाँठ में से नई बेलों आ जाती है। इस प्रकार उतारी गयी बेलों से दूसरे वर्ष अधिक उत्पादक एवं लाभ मिलता है।

मिट्टी चढ़ाना : मई एवं सितम्बर माह में बाहर से लाई गयी मिट्टी डाली जाती है। अधिकतर तालाब की मिट्टी इस कार्य के लिये उपयुक्त रहती है।

पान की तुड़ाई : पुराने पान को जो कि बेल के साथ लगाते हैं, मार्च/अप्रैल माह में निकाल देते हैं। इन पानों का मूल्य दूसरे पानों की तुलना में अधिक होती है। इसके बाद वर्षा ऋतु के पहले जमीन से दो फूट ऊँचाई तक के पान तोड़ लेते हैं तथा जब भी आवश्यकता होती है, पान तोड़ लिये जाते हैं।

रोग नियंत्रण : पान की प्रमुख बीमारी है पद एवं पर्ण गलन रोग, जीवाणु जनित रोग तथा पर्ण दाग, सीमान्त झुलसन या एन्थ्रेक नोज। यह रोग क्रमश+ फाईटोपथोरा पेरासिटिका किस्म पाइपरिना नामक फफूँद, जैन्थोमोनोस केम्पेस्ट्रीस पी० व्ही० वेटालिकोला नामक जीवाणु तथा कोलिटो ट्राईक्रम कैपसीसी नामक फफूँद से उत्पन्न होता है। पद एवं पर्ण गलन से बचाव के लिये वर्षा का मौसम आते ही बोर्डो मिश्रण 0.5 प्रतिशत बेलों की जड़ों के पास 2.5 लीटर एक मीटर लम्बाई के हिसाब से डालें। इसी उपचार से प्रतिमाह स्वस्थ बेलों को अक्टूबर माह तक उपचारित करें। जीवाणु जनित रोग के रोकथाम हेतु बरेजा का निर्माण वैसे स्थान पर करें जहाँ पहले रोग न रहा हो तथा स्वस्थ बेलों का चुनाव करें एवं स्ट्रेप्टोसाईक्लीन नामक दवा के घोल (3 ग्राम 10 लीटर पानी में) बोर्डो मिश्रण 0.5 प्रतिशत के घोल में 25-30 मिनट डुबोकर उपचारित करने के बाद रोपण करें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर 15-20 दिनों के अन्तर पर 0.5 प्रतिशत स्ट्रेप्टोसाईक्लीन का छिड़काव करते रहें। पर्ण दाग, सीमान्त झुलसन रोग या एन्थ्रेकनोज से बचाव हेतु बोर्डो मिश्रण 0.5 प्रतिशत या कापर ऑक्सीक्लोराईड 0.1 प्रतिशत के घोल का छड़काव 20 दिनों के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार करें।

कीट नियंत्रण : सूक्ष्म लाल मकड़ी, सफुेद मक्खी, मिलीबग तथा माहू पान के प्रमुख कीट हैं। सूक्ष्म लाल मकड़ी में बचाव हेतु घुलनशील गंधक, सल्फेक्स (0.3 प्रतिशत), साल्टाफ (0.3 प्रतिशत) का छिड़काव लक्षण दिखाई देते ही करें तथा आवश्यकतानुसार दस दिन बाद दुहरायें। सफेद मक्खी, मिलीबग तथा माहू के रोकथाम के लिये (0.03 प्रतिशत) मेटासिस्टाक्स अर्थात् 1 मि०ली० मेटासिस्टाक्स 30 ई०सी० एक लीटर पानी में मिलाकर आक्रमित बेलों पर छिड़काव करें। यदिआवश्यक हो तो छिड़काव 10-15 दिन के अन्तर पर दुबारा करना चाहिए।

सूत्रकृमि नियंत्रण : पान को क्षति पहुँचाने वाले सूत्रकृमि में प्रमुख है रूट नॉट नीमाटोड यानि जड़ गाँठ सूत्रकृमि तथा रैनीफाम्र नीमाटोड। इनसे बचाव के लिये पान की नई बेललगाने से पहले मिट्टी में कार्बोफ्युरॉन की 1.5 किग्रा० सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर या नीम/सरसों की खल्ली 500 किलोग्राम, कार्बोफ्युरॉन 0.75 किग्रा० सक्रिय तत्व तथा नाइट्रोजन, स्फुर तथा पोटाश 150 : 100 : 50 किग्रा० एक साथ मिलाकर प्रति हेक्टेयर व्यवहार करें। खड़े पौधों में नीम/सरसों की खल्ली का 2000 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर व्यवहार से ये सूत्रकृमि नियंत्रण में रहते हैं।

किसान भाई ध्यान रखें कि खड़े पौधों में कार्बोफ्युरॉन का व्यवहार करने के पश्चात पत्तियों की तुड़ाई व्यवहार के 45 दिनों के बाद करें तथा कीटनाशक दवा छिड़काने के दस दिन बाद तक पान नहीं तोड़ें क्योंकि पान को कच्चा खाया जाता है।

❑

अध्याय 17

मखाना की वैज्ञानिक खेती

डा० बी० के० झा

मखाना एक जलाशयों में पैदा होने वाला अत्यन्त ही पौष्टिक एवं पूर्णरूपेण प्राकृतिक, बिना किसी कृषि रसायनों के प्रयोग से उत्पन्न होने वाली नगदी फसल है। इसे अंग्रेजी में Gorgon Nut या Fox Nut कहते हैं। यह Nymphaeaceae परिवार का पौधा है, जिसे यूरेलेफिरोक्स (Euryale Ferox) नाम से जाना जाता है। यह फसल तालाबों (Ponds), चर (Land depressions), मोईन (Ox-bow lakes), डबरा (Swamps) और खत्ता (Diches) के रूके हुए पानी में होता है। मखाना की खेती अभी पारंपारिक तरीकों से ही की जाती है। देश में फैली आद्र भूमि के बड़े क्षेत्र में इस विशेष फसल मखाना का उत्पादन एक संतुलित, शुद्ध, स्वस्थ तथा गुणकारी आहार एवं लाभकारी फसल के साथ ही इसके उत्पादन से जुड़े कृषकों/मल्लाहों की आर्थिक विकास में सहयोगी हैं।

मखाना उत्पादन क्षेत्र

मखाने की फसल उष्ण जलवायु के उत्तरी क्षेत्र में होती है। कांटेदार बड़े आकार की पत्तियों एवं आकर्षक फूलों वाले इस लोकप्रिय फसल की अधिकांश खेती बिहार, पश्चिम बंगाल और आसाम राज्यों में ज्यादा तथा उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, जम्मू और कश्मीर, त्रिपुरा एवं मणिपुर में थोड़ी मात्रा में होती है। देश में मखाना उत्पादन का कुल 80 प्रतिशत उपज सिर्फ बिहार राज्य में होता है। मुख्य मखाना उत्पादक जिले हैं : दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, सहरसा, कटिहार, पूर्णिया, समस्तीपुर, सुपौल, किशनगंज और अररिया।

लाभकारी रोजगारोन्मुख और निर्यात योग्य

देश में लगभग 13 हजार हे० क्षेत्र में मखाने की खेती होती है, जिससे लगभग 90 हजार टन बीज मखाना (गुड़ी) का उत्पादन होता है। इसका प्रशंसकरण कर लगभग 36 हजार टन लावा मखाना का उत्पादन किया जाता है। किसानों को उत्पादित मखाना से अनुमानत: 250 करोड़ रु० प्राप्त होते हैं तथा यही देश के विभिन्न बाजारों में 550 करोड़ रु० का व्यापार करती है। अभी मखाने का निर्यात नहीं हो रहा है, परन्तु इसकी गुणवत्ता, पौष्टिकता एवं प्राकृतिक / Organic विशेषताओं के आधार पर निर्यात की प्रचुर संभावना है।

जलवायु एवं सस्य क्रियाएँ

मखाना की खेती गर्म एवं शुष्क मौसम में होती है। इसकी रोपनी करने वाले बीज से पौधा नवम्बर, दिसम्बर में तैयार किया जाता है तथा जनवरी फरवरी में इसकी रोपनी की जाती है। मार्च, अप्रैल में इसमें काँटेदार पत्ते आ जाते हैं, जो तालाब की जलसतह को पूरी तरह से आच्छादित कर देते हैं। मई एवं जून में पौधे में फूल एवं फल आ जाते हैं। फल गोलाकार, काँटेदार वजनी होता है। जो पानी के सतह के अंदर जाकर जुलाई-अगस्त में फट जाता है, जिससे बीज बिखरकर जलाशय के नीचे बैठ जाते हैं। पत्तियों/पौधे

के गल जाने के बाद सितम्बर–अक्टूबर माह में इसकी बुहराई (Harvesting) की जाती है। बुहराई के लिए, दक्ष मछुआरे पानी के अन्दर गोता लगाकर जलाशय की सतह से बीज मखाना एकत्रित करते हैं।

इसके बाद बीज को सुखाकर, दो बार गरम कर लकड़ी के बने तख्ते (अफारा) पर रखकर लकड़ी के हथौड़े (थापी) से फोड़ा जाता है, जिससे मखाना लावा निकलता है। लगभग एक क्विंटल (100 kg.) बीज मखाने (गुड़ी) से 35 kg लावा तैयार होता है।

जल संसाधन का सम्यक उपयोग

मखाना की खेती के लिए उपयुक्त तालाब की मिट्टी जलोढ़, चिकनी या काली अच्छी समझी जाती है। तालाब में 2 फीट से 6 फीट तक पानी होना साथ ही सतह में कीचड़ का होना अनिवार्य है। कीचड़ की मोटाई 6" से 9" तक उपयुकत हे। तालाब में साफ और स्वच्छ स्थिर जल होनी चाहिए। चूँकि यह जल में उत्पादित प्राकृतिक फसल है इसलिए इसमें किसी प्रकार का कृषि रसायन खाद अथवा दवाओं का प्रयोग नहीं होना चाहिए। बिहार एवं देश के अन्य राज्यों में जहाँ उपयोगी जलाशय उपलब्ध है उन राज्यों में मखाना खेती की अच्छी संभावना हे।

प्राकृतिक पौधे-संरक्षण

मखाना के फसल की कोमल एवं नयी पत्तियों पर कभी कभी कीट एवं व्याधि का प्रकोप भी होता है, जिससे फसल को थोड़ी हानि होती है। इसमें लगने वाले प्रमुख कीट व्याधि हैं–लाही या माहु (Aphids), पत्र–लपेटक (Case-worm), पत्रलांछन रोग (Phoma) इत्यादि। जलाशय के जल एवं उसकी मछलियों को हानि न हो इसलिए किसी तरह की कीट रसायनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। तालाब एवं उसके आस पास के क्षेत्रों की सफाई से कीट व्याधि नियंत्रित रहते हैं।

मखाना के साथ मिश्रित रूप से मछली की खेती भी की जा सकती है। मखाना के तालाब में सिर्फ श्वाँस लेने वाली मछलियों (Air breathing fishes) जैसे कवई, माँगुर, सिंहीं, गरई इत्यादि ही उत्पादित की जा सकती है। छोटे तालाबों में मखाना की पत्तियों द्वारा जल की पूरी सतह ढ़क जाने से मछलियों को ऑक्सीजन मिलने में असुविधा होता है। बड़े आकार के तालाबों में जल में श्वाँस लेने वाली मछलियों जैसे रोहू, कतला, मृगाल, इत्यादि का उत्पादन किया जा सकता है अगर जल सतह का कुछ हिस्सा मखाना पत्तियों के आच्छादन से मुक्त रखा जाए।

गुणवत्ता,पौष्टिकता एवं उपयोग

मखाना एक प्राकृतिक, शुद्ध एवं स्वस्थ आहार है। यह अत्याधिक पोषक है और इसमें उत्तम गुणवत्ता का सुपाच्य प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, जिसे सभी आयु वर्ग के लोग खा सकते हैं। लावा मखाना में 12.8% आद्रता, 9.7% प्रोटीन, 76.9% कार्बोहाईड्रेट, 0.1 वसा, 0.5% खनिज लवण, 0.02% कैल्शियम, 0.9% फास्फोरस तथा 1.4 mg.fe/100 gm. कैरोटिन पाई जाती है। प्रति 100 gm. लावा मखाना से 362 K. Cal. प्राप्त होती है। मखाना में औषधीय गुण भी होते हैं। यह, श्वाँस, धमनी, पाचन तथा प्रजनन संबंधी व्याधियों में लाभकारी है। मखाना का उपयोग भुनकर स्नैक्स के रूप में और कई प्रकार के स्वादिष्ट मिष्ठान बनाने में जैसे खीर,पुडिंग, बर्फी इत्यादि में होता है। चने की दाल के साथ दाल मखाना और सब्जियों में डाल कर वेजीटेबल करी जैसा अत्यन्त स्वादिष्ट एवं सुपाच्य व्यंजन बनाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानलों में भी इसका प्रयोग होता है। इसका उपयोग दवा उत्पादन और बनारसी साड़ी के स्टार्च कोटिंग में भी किया जाता है। मखाना में उपलब्ध आईजीन और लाईसिन नामक प्रोटीन दूध और अंडे से ज्यादा मात्रा में पाया जाता है।

❑

अध्याय 18

बाँस की वैज्ञानिक खेती

भारत बाँस के प्रजातियों में काफी समृद्ध है। बाँस संसाधन के मामले में चीन के बाद भारत का सीान हे। भारत में पूर्वोत्तर राज्य, पश्चिम घाट, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश एवं अंडमान निकोबार द्वीप में काफी मात्रा में बाँस पाए जाते हैं पूर्वोत्तर राज्यों में व्यावसायिक दृष्टिकोण से बाँस उत्पादन, गरीबी उन्मूलन एवं रोजगार सृजन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ है। बिहार राज्य के कोशी एवं पूर्णियाँ प्रमण्डल के जिले में बाँस की खेती के लिए उपयुक्त है। यहाँ की मिट्टी एवं जलस्तर इस फसल के लिए काफी लाभदायक है। यहाँ वर्षा औसत स्तर पर अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक है, जो बाँस के लिए आवश्यक है।

बाँस तीन से चार महीने में काफी ऊँचाई प्राप्त कर लेता है। इसके बाद सिर्फ शाखा का ही विकास होता है। बाँस वजन में हल्का, लचीला एवं आसानी से फटता है। इसी गुण के कारण प्राकृतिक विपदा जैसे भूकम्प एवं तूफान वाले इलाके में आवास निर्माण हेतु बाँस आदर्श पदार्थ माना जाता है। बाँस निवास सुरक्षा, जीवन यापनसुरक्षा, पारिस्थितिक सुरक्षा एवं खाद्य सुरक्षा प्रदान करता है।

मिट्टी : बाँस का विकास ज्यादातर बलुआही दोमट से लेकर चिकनी मिट्टी, (जो नदी द्वारा बिछाए जाते हैं) या चट्टानी मिट्टी में अच्छा होता है, पर दलदली मिट्टी में भी इसका विकास देखा गया है। क्ले से क्ले दोमट एवं अम्लीय गुणवाले (P^H 6.00 से 7.50) वाले इलाकों में बाँस के सघन वृक्ष सामान्य तौर पर पाए जाते हैं एवं यह मिट्टी एवं जलवायु बाँस हेतु उत्तम मानी गई है।

खेती की तैयारी : साधारणत: बाँसा रोपने हेतु खेत की जुताई नहीं की जाती है, परन्तु यह आवश्यक है कि गड्ढे खोदने के पहले कम से कम एक बार मिट्टी पलटने वाले हल एवं दो बार देसी हल से जुताई कर पाटा देकर समतल कर लेना चाहिए।

पौध प्रसारण : बाँस का प्रसारण बीज एवं वानस्पतिक दोनों ही विधियों से होता है परन्तु वानस्पतिक विधि से ही साधारणत: पौधे लगाये जाते हैं। इस विधि में कंद एवं कंद के बीट्स रोपण सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता है। कंद रोपनी के लिए एक वर्ष पुराने कंद को उपयोग में लाया जाता है। इसके लिए कंद को जड़ के साथ खोदकर निकाला जाता है, जिसकी ऊँचाई लगभग 1 मीटर की हों बीज से पौधशाला में जून-जुलाई माह में बीचड़ा तैयार कर लिया जाता है। 10-15 सेमी० के पौध को एक वर्ष तक पॉलीथीन बैग में लगाकर रखा जाता है। तदोपरांत खेतों में लगाया जाता है।

पौध रोपण : बाँस का पौध रोपण मानसून के शुरू होते ही उपयुक्त रहता है फिर भी जून से सितम्बर माह उपयुक्त है। रोपण हेतु 60 सेमी० ञ 60 सेमी० का गड्ढा खोदकर कम्पोस्ट 5 किलो प्रति गड्ढ़ा एवं 50 ग्राम थिमेट 10 जी मिट्टी के साथ मिलाकर भर लें एवं रोपण का कार्य करें। गड्ढे से गड्ढ़े की दूरी (कतार से कतार) पाँच मीटर एवं पौध से पौध चार मीटर अच्छा माना गया है। इस प्रकार एक हेक्टेयर में पांच सौ पौधे लगेंगे। पौध रोपण के उपरांत सिंचाई अवश्य करें। ऐसा पाया गया है कि बाँस में पौध रोपण पश्चात् पौधे की मृत्यु दर 15-20 प्रतिशत् होत5ा है। अत: प्रतिस्थापन हेतु 20 प्रतिशत छोटा पौधा अलग से रखा जाना चाहिए ताकि उसे प्रतिस्थापित किया जा सके।

उर्वरक : अच्छी फसल हेतु बाँस में नेत्रजन एवं पोटाश के रासायनिक उर्वरक का उपयोग वर्ष में दो

से तीन बार करना लाभप्रद होता है। बाँस अत्यधिक उर्वरक की चाहत रखने वाला पौधा है। काफी उपजाऊ मिट्टी में भी लगाया गया बाँस कम समय में सारे पोषक तत्वों को अवशोषित कर लेता है और उसे अतिरिक्त उर्वरक की आवश्यकता पड़ती है। निम्न सारणी के अनुसार बाँस में खाद/उर्वरक की मात्रा प्रति बीट्स के चारों ओर डालकर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर सिंचाई कर दें।

निकाई-गुड़ाई : प्रथम वर्ष तीन बार (अक्टूबर, फरवरी एवं मई) एवं द्वितीय वर्ष दो बार (अक्टूबर एवं मई) निकाई-गुड़ाई आवश्यक है, जिससे खर-पतवार से जमीन को साफ रखा जा सके।

सिंचाई : पौध रोपण के बाद दो साल तक प्रति वर्ष तीन सिंचाई आवश्यक है। इसके बाद साधारणतया सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह वर्षा पर ही निर्भर करता है।

अंतर्वर्ती फसल (इन्टर क्रॉपिंग)

बाँस के फसल का रोपण से कटाई के बीच की अवधि पांच साल माना जाता है। पहले तीन सालों में अंतवर्ती फसल के रूप में हल्दी, अदरख, मिर्च आदि एवं छाया चाहने वाले सुगंधित पौधे को लेकर अतिरिक्त लाभ प्राप्त किया जा सकता है। बाँस की नर्सरी से लेकर खेत में प्रतिस्थापन के समय उर्वरक का प्रयोग अत्यंत आवश्यक है।

कटाई एवं उपज : बाँस का वार्षिक उपज प्रत्येक वर्ष निकलने हुए नये कलम पर निर्भर करता है। कलम तीन से चार वर्ष में परिपक्व होते हैं। अच्छे वातावरण में एक बाँस सामान्यतया एक साल में दस कलम पैदा करता है। अपने तीस वर्ष के जीवन चक्र में यह 300 कलम पैदा करेगा।

व्यावसायिक दृष्टिकोण से बाँस की कटाई पाँचवें साल से शुरू होती है। कटाई के प्रथम वर्ष 6 कलम प्रति कलम्प एवं दूसरे वर्ष 7 कलम प्रति क्लम्प प्राप्त होता है और इसी क्रम में बढ़ोत्तरी पायी जाती है। एक से दो साल पुराने कल्म को पुनर्जीवन के लिए छोड़ दिया जात5ा है। एक कल्म का औसत वजन 100 किलो मानते हुए प्रथम वर्ष में उपज 9.6 टन प्रति एकड़ होगा जो नौवें साल में 14.4 टन होगा। बाँस उगाने से समतल क्षेत्र में इसका उपज 5-12 टन प्रति हेक्टेयर, लेकिन वन क्षेत्र में 3-4 टन प्रति हेक्टेयर प्राप्त होता है।

वित्तीय पहलू

इकाई खर्च : एक एकड़ इकाई बाँस रोपण हेतु पाँच सालों तक 9400 रुपये खर्च होता है। खर्च का विवरणी नीचे तालिका में दी जा रही है।

तालिका 1. : एक एकड़ भूमि पर बाँस लगाने का खर्च

क्र०	अवयव	इकाई	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष	कुल
1.	रोपण सामग्री 20 प्रतिस्थापन के साथ	200	40				240	200
2.	खाद एवं उर्वरक	320	320	320	320	320	1800	320
3.	पौधा संरक्षण	100	100	100	100	100	500	100
4.	एक वर्ष में तीन सिंचाई	1200	1200				2400	1200
5.	घेराबंदी	960					960	960
	उप कुल	**2780**	**1660**	**420**	**420**	**420**	**5900**	**2780**

श्रमिक								
1.	खेत की तैयारी	250					250	250
2.	गड्ढे की खुदाई एवं भराई, 15 गड्ढे प्रति दिन प्रति मजदूर	500	100				600	500
3.	रोपाई एवं सहारा देना	250	50				300	250
4.	पौधा संरक्षण	100	100	100	100	100	500	100
5.	निकाई, गुड़ाई (प्रथम वर्ष-3 एवं द्वितीय वर्ष 2-4 मजदूर दिवस प्रति निकाई गुड़ाई	250	167				417	250
6.	छटाई तीसरे वर्ष से	0	0	250	250	250	750	0
7.	मिट्टी कार्य एवं अन्य	100	100	100	100	100	500	100
8.	बाँस की कटाई-छट्ठा एवं सातवाँ वर्ष-10 कार्य दिवस, आठवां वर्ष एवं इसके बाद 12 कार्य दिवस प्रति वर्ष							
	उप कुल	**1450**	**517**	**450**	**450**	**450**	**3317**	**1450**
	विविध व्यय	**212**	**109**	**44**	**44**	**44**	**451**	**212**
	कुल योग	**4442**	**2286**	**914**	**914**	**914**	**9668**	**4442**
	या	**4400**	**2300**	**900**	**900**	**900**	**9700**	**4400**

आय : बाँस की कटाई साधारणत: छट्ठे वर्ष और इसके बाद से प्रारम्भ होता है। कच्चे बाँस का बिक्री दर साधारणत: 550 रुपये प्रति टन होता है।

तालिका-2

बाँस की रोपनी से उपज एवं आय

वर्ष	उपज (मैट्रीक टन में)	आय (रुपये में)
छठा	9.6	5200
सातवाँ	11.2	6160
आठवाँ	12.8	7040
नौवाँ एवं आगे के वर्षों में	14.4	7920

व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बाँस के प्रजातियों : बैम्बूसा बालकोआ, बैम्बूसा नूटन्स, डेन्ड्रोकैलेमस स्ट्रिक्टस, बैम्बूसा बैम्बोस, बैम्बूसा टुल्डा, बैम्बूसा वलगेरिस, डेन्ड्रोकैलेमस हेमिलटोनी, डेन्ड्रोकैलेमस एस्पर, डेन्ड्रोकैलेमस गिगनेटस, गौडा अगस्टीफोलिया ।

❑

अध्याय **19**

मशरूम की वैज्ञानिक खेती

डा० दयाराम
मुख्य अन्वेषक, मशरूम परियोजनायें
राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा

¼d½ vk;LVj ¼f<xjh½ e'k:e mRiknu

बिहार में यद्यपि ओयस्टर (ढ़िगरी) मशरूम सालोभर उगाया जा सकता है, परन्तु ओयस्टर मशरूम की लाभकारी खेती सितम्बर से मार्च तक किया जा सकता है। ओयस्टर की प्रजातियों में भूरा ढिगरी (प्लूरोटस सेजोर काजू), स्वेत ढ़िगरी (प्लूरोटस फ्लोरिडा) एवं गुलाबी ढ़िगरी (प्लूरोटस जामोर) प्रमुख है जो बिहार के लिये काफी उपयुक्त है।

Hkwlk ;k iqvky xeZ ty }kjk mipkfjr djuk % धान के पुआल की कुट्टी या धान का भूसा लेकर साफ पानी से धोकर 4–6 घंटा फुलाये एवं गर्म जल मे आधा घंटा खौलाये (जीवाणु रहित करने के लिये) जीवाणु रहित भाप द्वारा या दवा द्वारा भी किया जा सकता है 10 ग्रा0 वेविस्टिन, 100 मि0ली0 फार्मेलिन एवं 100 लीटर पानी एक ड्रम में मिलाकर उसमें 10 किलोग्राम भूसा या पुवाल की कुट्टी रात भर फुलाये।

Hkwlk ;k iqvky QSykuk : गर्म जल या भाप से शोधित कर जल निथार कर स्वच्छ फर्श पर फैलाये एवं ठढ़ा होने पर नमी की जांच करे।

ueh dh tkap djuk % उचित नमी की जांच के लिये उपचारित कुट्टी या भूसा को एक हाथ में लेकर कस कर मुट्ठी से दवाये। यदि अंगुलियों के बीच से पानी की बूंद न टपके परन्तु पानी हाथ में हल्का लग जाय तो नमी उपयुक्त समझे। यदि पानी अंगुलियों के बीच से टपके तो नमी अधिक समझे और इसे कुछ समय तक और फैलाकर नमी की उचित मात्रा बनाये। यदि हथेली में पानी न लगे तथा भूसा या पुआल कड़ा लगे तो नमी की कमी समझे तथा शुद्ध जल का छिड़काव करके उचित नमी बनायें।

cht dh cqokbZ djuk % उपचारित भूसा या पुआल को नमी जाँचने के पश्चात एकत्रित करके 150 ग्राम मशरूम बीज प्रति किलोग्राम शुष्क पुआल की दर से मिलाकर नाइलान की जाली मे भरकर ऊपर से पालीथीन थैली ओढ़ाये या 18 × 22 से.मी. की पालीथीन थैली में अच्छी तरह भरकर मुह बांध कर चारो तरफ 20–25 छिद्र (0.5 मि.मी.) बनाकर उत्पादन गृह (झोपड़ी में) में रखें।

Qly fudyuk % 15 से 20 दिन में कवक जाल पूरे पुवाल या भूसे को ढ़ंक लेगा तो पन्नी हटा दे तथा झोपड़ी में अन्दर की तरफ चारो ओर जूट का मोटा बोरा लगाये तथा उसीपर बराबर जल छिड़ककर अन्दर नमी बनाये। पन्नी हटाने के 3 से 5 दिन में मशरूम निकालना प्रारम्भ करता है तथा अगले 3 से 5 दिन में तोड़ने योग्य मशरूम तैयार हो जाता है।

Qly rkMuk : अब इसे तीन अंगुलियों से पकड़ कर घुमाये तो मशरूम टुट कर हाथ में आ जायेगा। इसे अच्छी तरह साफ करके आवश्यकतानुसार प्रयोग करे। अथवा छिद्रयुक्त पालीथीन थैले में डालकर (200 ग्राम) बाजार में बेचे। यदि बेचने में असुविधा है तो इसे सूर्य के प्रकाश में अच्छी तरह सुखाकर पालीथीन बैग में हवा रहित दशा में भण्डारण करें।

mRiknu [kpl	&	*:0 35@fdykxke*
fcØhnj	&	*:0 100@fdykxke*
'k)ykHk	&	*:0 65@fdykxke*

¼[k½ CkVu e'k:e mRiknu

विहार में बटन मशरूम का उत्पादन सितम्बर के अन्तिम सप्ताह से (खाद बनाना) फरवरी/मार्च तक किया जा सकता है। बिहार में बटन मशरूम की दो प्रजातियों *अगैरिकस वाईस्पोरस* तथा *अगैरिकस वाई टारकिस* सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है। कम खर्च में लम्बी अवधि की खाद 28 दिन में तैयार किया जा सकता है। अतः लम्बी अवधि की खाद बनाने की विधिका विवरण दिया जा रहा है।

[kkn@dEikLV r;kj djuk

vko';d lkexh % पुवाल की कुट्टी या गेहूँ का भूसा – 10 क्विंटल, मुर्गी की खाद 2 क्विंटल, गेहूँ का चोकर 2 क्विंटल, जिप्सम 40 किलोग्राम, यूरिया 20 किलोग्राम, सिंगल सुपर फास्फेट 20 किलोग्राम, म्यूरेट ऑफ पोटाश 10 किलोग्राम।

[kkn r;kj djuk % गेहूँ का भूसा या पुवाल की कश्ट्टी को पक्के फर्श पर फैलाकर पानी से भिंगोकर 48 घंटे तक रखे। तत्पश्चात इस गीले भूसे या पुवाल पर उर्वरको की अनुशंसित मात्रा विखेर कर मिलाये (जिप्सम को छोड़कर) तथा 2.0 मी0 चौड़ा, 1 मीटर ऊँचा एवं लम्बाई आवश्यकतानुसार, ढ़ेर लगाये। तत्पश्चात 6वे, 10वे, 13वे, 16वे, 22 वे, 59 वे, एवं 28वे दिन पहली से अन्तिम पल्टाई करें। जिप्सम को तीसरी पल्टाई के समय मिलायें। अब 28वे दिन खाद की गुणवत्ता की जाँच करे। जांच में निम्नलिखित बातो का ध्यान रखे।

- ❑ खाद में कोई गंन्ध (अमोनिया की) नही आना चाहिए।
- ❑ खाद का रंग सुनहले रंग का होना चाहिए।
- ❑ पी0एच0 (अम्लता एवं झारीयता) 6.5–7.5 तक होना चाहिए।
- ❑ नमी की जाँच हेतु एक मुट्ठी में खाद को लेकर दबाने से ढ़ेला बने परन्तु हल्का सा झटका देने पर कम्पोस्ट फैल जाये।
- ❑ उपरोक्त जाँच करने के पश्चात बुवाई करें।

cht dh cokbl ¼Likfux½ djuk % तैयार कम्पोस्ट में बीज को अच्छी तरह मिलाते है 100 कि0ग्रा0 कम्पोस्ट में 500 से 750 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। अतः पूरे खाद में बीज मिलाने के पश्चात खाद 40 × 30 से0मी0 आकार के प्लास्टिक थैले में भरे या वाँस आदि से बने रैक पर रखे और उसे उपचारित अखवार से ढ़ककर जल का छिड़काव अखवार पर करके आवश्यक नमी बनाये रखे। जल का छिड़काव दिन में दो बार करने से खाद में आवश्यक नमी बनी रहती है। इस प्रकार 20–25 दिन में पूरे खाद में सफेद कवक जाल फैल जाता है तब केसिंग करते है।

dfl x ¼enk vkoj.k p<kuk½ djuk % दो वर्ष पुरानी अच्छी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद केसिंग के लिये उत्तम पाया गया है। अतः खाद को तोड़कर कंकड़ अथवा घास–पात या अन्य चीजो को चुनकर हटा दें। इसके पश्चात स्वच्छ फर्श पर फैलाकर 4 प्रतिशत फर्मल्डिहाइड, 0.2 प्रतिशत इण्डोसल्फान एवं 0.1 प्रतिशत कार्वेन्डाजिम का घोल इस खाद पर छिड़ककर खूव मिलाये। उचित नमी होनें पर जूट के बोरे से ढ़ंके। इस प्रकार 10 दिन तक रखने पर केसिंग मृदा उपचारित हो जाती है तब इसे प्रयोग में लाये। अब बिजाई युक्त थैला या ट्रे में जिसमें कवक जाल पूरी तरह से फैल गया है उस पर 2.5 से 3 से0मी0 मोटा केसिंग करें। बराबर नमी बनाये रखने के लिये जल का छिड़काव केसिंग पर करे एवं उत्पादन गश्ह में बराबर नमी बनाये रखने के लिये दिवाल पर चारो तरफ जूट के बोरे को टांगे एवं उसे भीगाकर रखे।

Qkly dh n[kHkky % 10–12 दिन तक इसी तापक्रम पर थैला रखे ताकि कवक जाल केसिंग मश्दा मे फैल जाये। अब इस कमरे का तापक्रम समान्य से कम पानी, 15–20 डिग्री के बीच रखे तो 5–7 दिन में मशरूम निकलना प्रारम्भ हो जाता है, और 2–5 दिन मे ंतोड़ने योग हो जाता है। आवश्यक नमी बनाये रखने के लिये जल का हल्का छिड़काव दिन में दो बार करते रहे।

Qly dh rqMkbZ ,oa fcØh % टोपी खुलने के पूर्व (निश्चित आकार का) हाथ की तीन ऊगलियों की मदद से तोड़कर इसे एकत्रित करके सफाई करके बाजार में भेजे। फसल की तुड़ाई 6–8 बार तक 10 से 12 सप्ताह में किया जा सकता है। अच्छी फसल एवं अधिक मुनाफा के लिये सितम्बर माह तक खाद बनाये अक्टूवर के प्रथम सप्ताह तक बुवाई करे एवं नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक केसिंग कर ले ताकि नवम्बर के अन्तिम सप्ताह से फरवरी/मार्च तक फसल प्राप्त हो सके।

Qly rkMus ds i'pkr vPNh rjg lQkbZ djus ds i'pkr iSdsftax esa ykdj cktkj esa fcØh djsaA

vko';d lko/kkfu;k¡ % फसल तोड़ने के पश्चात बने घाव (गड्ढे) को केसिंग से भर दे तथा पानी का हल्का छिड़काव करे। टोपी खुलने के पूर्व तुड़ाई करे। लम्बी अवधि के खाद के प्रयोग से प्रति क्विंटल खाद से 18 से 20 किलोग्राम उपज प्राप्त होती है।

उत्पादन खर्च	–	रू0 45/किलोग्राम
बिक्री दर	–	रू0 100/किलोग्राम
शुद्ध लाभ	–	रू0 55/किलोग्राम

❑

ogh fdlku gS ijkA tks NkMs gMMh dk pjkAA
lubZ dkV dj cko èkkuA rkdk dfg, prqj fdlkuAA

सनई की खाद धान की फसल के लिए बहुत अच्छी होती है। बरखा शुरू होने पर चतुर किसान पहले खेत में सनई का पौधा उपजाता है। सनई के पौधों को काट कर पानी में सड़ा कर खाद बनाई जाती है। यह हरी खाद भरपूर फसल देती है।

अध्याय 20

मधुमक्खी पालन

डा० रामाश्रित सिंह
सेवानिवृत, मुख्य वैज्ञानिक (मधुमक्खी पालन), राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर

मधुमक्खियाँ मानव की सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं। मधुमक्खियों की सेवायें अद्धितीय और अनुपम है। मधुमक्खियाँ परागण के द्वारा फसलों की पैदावार बढ़ाती हैं। मधुमक्खियों से मिलने वाला मधु अनगिनत बिमारियों से निदान दिलाता है। मधुमक्खी का डंक गठिये की बिमारी तथा दूसरी कई बिमारियों में लाभ पहुँचाता है। मधुमक्खिओं से मिलने वाला मोम बहुत से औद्योगिक कारखानों में इस्तेमाल होता है। मधुमक्खियाँ मानव के लिए आर्थिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण हैं जिसका वर्णन इस प्रकार है-

1. **मधु :** मधु पृथ्वी पर मिलने वाली सब वस्तुओं में अति श्रेष्ठ और अमश्त माना गया है। मधु एक पौष्टिक और लाभदायक भोजन है। हमारा देश एक कृषि प्रधान देश है जिसमें हमारे देश में मधुमक्खियों के काम आने वाले फूलवाले पौधों आदि की कमी नहीं है। अगर सही ढंग से इस धन्धे का विकास किया जाय तो अपने देश में करोड़ों रूपये की वार्षिक वृद्धि की जा सकती है। मधु उत्पादन द्वारा राष्ट्रीय सम्पदा में वृद्धि तो होती ही है साथ ही साथ देशवासियों को स्वास्थ्यप्रद भोजन भी मिलता है।

2. मोम : मधुमक्खियों से मिलने वाला दूसरा अत्यन्त आवश्यक व मूल्यवान पदार्थ मोम है। कई उद्योगों में इसका प्रयोग किया जाता है मधुमक्खियों द्वारा इसका उत्पादन अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए किया जाता है परन्तु इसका उत्पादन व्यापक पैमाने पर भी किया जा सकता है।

3. राज अवलेह : यह बहुत ही उपयोगी पदार्थ है जिसे छः दिन से 12 दिन उम्र की मधुमक्खियाँ अपने सिर की ग्रन्थियों से पैदा करती हैं और रानी बनने वाले शिशुओं को दिया जाता है। इसके खाने से रानी बनने वाले शिशुओं का वजन दूसरे शिशुओं से कई गुणा बढ़ जाता है। मानव शरीर में भी इसका उपयोग पाया गया है। विदेशों में यह मनुष्य के आ़म आहार के रूप में प्रयोग किया जाता है।

4. पराग : यह मधुमक्खियों का प्रधान भोजन है। इससे उनको प्रोटीन की आवश्यकता पूरी होती है। यह नवजात शिशुओं से लेकर बड़ी मधुमक्खीयाँ बनने तक सम्पूर्ण भोजन का काम करती है। यह मानव जाति के लिए भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। वैज्ञानिकों ने खोज की है कि पराग व शहद का मिश्रण या अकेले पराग का इस्तेमाल करने से लम्बी आयु होती है और जल्दी बुढ़ापा नहीं आता है। मानव जीवन में कुछ खनिज, कुछ किण्वक और कुछ अम्ल तत्त्व की जरूरत होती है और पराग का इस्तेमाल करने से इन सब तत्वों की पूर्ति हो जाती है।

5. मधुमक्खियों का डंक : मधुमक्खियों के पास डंक होता है जो उसकी विष ग्रन्थि के साथ जुड़ा रहता है। जब मधुमक्खी डंक मारती है तो यह विष ग्रन्थि से उत्पन्न होने वाला विष शरिर में प्रविष्ट होता है। जिससे मानव को कष्ट होता है। लेकिन यह किसी प्रकार की हॉनि नहीं पहुँचाता। इस डंक के विष से गठिये व अन्य कई बीमारियों का उपचार होता है। विदेशों में इस विष को जमा करके इसके इन्जेक्शन बनने लगे है जो बाजार में उपलब्ध हैं।

6. कृषि उत्पादन में वृद्धि : कृषि उत्पादन में मधुमक्खियों की बहुत ज्यादा सहयोग होता है। परागण करके मधुमक्खियाँ फसलों की उपज बढ़ाती है। अच्छी किस्म के फल और बीज पैदा होते है। अनुमान लगाया गया है कि अगर शहद और मोम की प्राप्ति से एक रुपया मिलता है तो परागण से 20 से अधिक रूपयों

का लाभ होता है। इतना ही नहीं परागण से मधूमक्खियाँ कई जंगली पौधों की जातियों को भी अपना परिवार चलाने मे मदद लेती है। इससे वातावरण को शुद्ध बनाये रखने में मदद मिलती है।

मधुमक्खी पालन से लोगो को रोजगार मिलता है। जिन लोगों के पास अधिक भूमि नहीं होती, वे भी बिना किसी परेशानी के मधुमक्खी पालन कर सकते है। कोई भी व्यक्ति, बच्चा, बूढ़ा, नौजवान, महिला इस धंधा को अपना सकता है क्योंकि इसकी जानकारी सरल है, लागत कम है एवं आमदनी शीध्र मिलने लगता है।

मौन पालन कब एवं कैसे शुरू करें

साधारणतया मधुमक्खी पालन कभी भी शुरू किया जा सकता है लेकिन अक्टूबर-नवम्बर या फरवरी-मार्च में शुरू करने पर अधिक सफलता मिलती है। इस अवधि में मौसम अनुकूल होने से मधुमक्खियों को भोजन इकट्ठा करने में आसानी होती हैं, तथा भोजन (पुष्परस एवं पराग) भी अधिक उपलब्ध होते है। अधिक भोजन उपलब्ध होने पर मधुमक्खियों की संख्या तेजी से बढ़ने लगती है। शत्रु तथा रोग का आक्रमण भी इस समय कम होता है। आने वाले समय में अगर भोजन की कमी होती है तो इस अवधि का एकत्र किया हुआ भोजन काम में आता है और मौनों की संख्या में कमी नहीं हो पाती है तथा विषम परिस्थिति को बर्दाश करने की क्षमता रहती है। अत: जब नये परिवार से शुरू करते है तो पहले मौसम में पहला शहद एवं मोम का निष्कासन नहीं करना चाहिए।

मधुमक्खी पालन की शुरूआत हमेशा 3-5 परिवार से ही करना चाहिए ताकि मधुमक्खीपालक को धीरे-धीरे इनके स्वाभाव, आवश्यकता एवं प्रबन्धन की व्यवहारिक जानकारी हो सके। नये मौन समुदाय को स्थापित करते समय प्रत्येक मौन पेटिका में 5 फ्रेम मौन खरीदना चाहिए क्योंकि इनकी बिक्री फ्रेम पर ही होती है। चूँकि रानी मधुमक्खी लगभग दो हजार अंडा प्रति दिन देती है अत: मौनों की संख्या तेजी से बढ़ जाती है। 21 दिनों के बाद प्रति दिन लगभग दो हजार मधुमक्खी की संख्या बढ़ने लगती है। मौन परिवार खरीदते समय रानी पर सबसे अधिक धयान देना चाहिए। रानी नयी एवं गर्भित होनी चाहिए। जिससे अंडा देने की क्षमता अधिक रहे। नयी एवं गर्भित रानी का उदर भाग चमकता हुआ होना चाहिए। बिना गर्भित रानी का उदर भाग भूरा एवं चमकहीन होता है। खरीदे हुए फ्रेम के छत्ते में अंडे, ब्रूड, पराग तथा मधुकोष्ठ पूरी तरह होने चाहिए। प्रौढ़ों की संख्या में नर्स यानि कम आयु की मधुमक्खी भी होनी चाहिए। परिवार में अधिक संख्या में ड्रॉन कोष्ठ नहीं होना चाहिए क्योंकि ड्रॉन, श्रमिक मौनों से 7-8 गुणा अधिक मधु खाते हैं तथा परिवार में रानी के साथ मैथुन के सिवा कुछ नहीं करते है।

मौनालय का प्रबंध

आदर्श मौनालय में मधुमक्खी परिवार यथासम्भव एक समान होना चाहिए अन्यथा मजबूत परिवार, कमजोर परिवार के साथ लूटमार कर सकती है। रानी मधुमक्खी को प्रति वर्ष बदल देने से परिवार की वृद्धि अधिक होती है। फराने छत्तों को जो काला हो गया हो, उसको गलाकर नया छत्ता बना लेना चाहिए। क्योंकि फराने छो पर मधुमक्खी कम काम करती है एवं मधु की गुणवत्ता में कमी आती है। मजबूत परिवार में रानी बनने देना चाहिए क्योंकि कमजोर परिवार की रानी कमजोर होती है। परिवार को बँटवारा करते समय नई गर्भित रानी दे देने से परिवार की बढ़ोत्तोरी बनी रहती है। मधु-काल के पूर्व एवं मौसम खराब होने पर कृत्रिम भोजन देना चाहिए। भोजनाभाव काल में अतिरिक्त छत्ते को निकालकर भंडारित कर देना चाहिए।

जाड़े के मौसम में मौनवंश का निरीक्षण दोपहर में एवं गर्मी में सुबह-शाम करना चाहिए। मधुस्राव में मौनवंश का निरीक्षण एक सप्ताह पर एवं भोजनाभाव काल में 15 दिनों पर करना चाहिए। वर्षा के समय निरीक्षण नहीं करना चाहिए।

एक आदर्श मौनालय में एक मौन वंश का निरीक्षण रजिस्टर होना चाहिए। निरीक्षण करते समय चौखटों की संख्या, शिशु पालन (प्रति वर्ग से.मी.), भोजन (प्रति वर्ग से.मी.) रोग आदि कार्य का विवरण तालिका में अंकित करना चाहिए। इससे अगले निरीक्षण के समय मौन वंश के विकास तथा उपचार के प्रभाव की जानकारी मिलती है।

❑

अध्याय 21

कृषि उपयोग हतु पॉली हाऊस का निर्माण

कृषि में ग्रीन हाउस का उपयोग सर्वविदित है, जिसमें कम से कम आंशिक रूप से नियंत्रित वातावरण में फसलें उगाई जाती हैं। ग्रीनहाउस में तापमान एवं नमी नियंत्रित करने के लिए उपकरण लगाए जाते हैं जो कि हमारे ग्रामीण परिवेश में लघु एवं सीमांत किसानों के लिए खर्चीला होता है। इसे अधिक सस्ता एवं उपयोगी बनाने के लिए पूर्वी क्षेत्र के लिए भा०कृ०अनु०प० का अनुसंधान परसिर, पटना में पॉली हाउस का निर्माण किया जाता है। पॉली हाउस पारदर्शी पालीथीन एवं लोहे की छड़ से बना ढ़ाँचा है जिसके अंदर का तापमान बाह्य वातावरण से 5°–7° सेंटी ग्रेड अधिक होता है। इसका उपयोग, ग्रीष्मकालीन सब्जियों की पौधशाला (नर्सरी) उगाने हेतु किया जा सकता है ताकि बाजार से सब्जियों की उपलब्धता मौसमी सब्जियों की तुलना में 20 – 35 दिन पहले हो सके। एक पॉली हाउस (5 मी० × 2.5 मी० × 1.6 मी०) के निर्माण में लगभग रु० 3500/- लागत आती है।

दो प्रकार की पाली हाउस की आकृति ज्यादा प्रचलित है–पहला आयताकार एवं दूसरा डोम आकार का। डोम आकारवाली पॉली हाउस में पौधों को सूर्य का प्रकाश अधिक मात्रा में मिलता है, इसलिए डोम टाईप फोल्डिंग पॉलीहाउस बनाने की विधि यहाँ वर्णित है।

डोम आकारवाली पॉली हाऊस बनाने की विधि :

डोम टाइप पॉली हाउस बनाने के लिए सबसे पहले एम० एस० एंगिल सेक्शन से फिक्चर तैयार करते हैं। जिसके लिए 35 × 35 × 5 एम०एम० का 15.4 फीट लम्बा एंगिल सेक्शन देते हैं इसे अद्धचन्द्राकार में मोड़कर फिक्चर तैयार किया जाता है। ध्यान रहे इसके मोडते समय एक किनारा उपर और दूसरा किनारा अपनी ओर रहे। 5 मीटर लम्बा, 2.5 मीटर चौड़ा और 1.6 मीटर उँचा डोम टाइप पॉली हाउस बनाने के लिए 22 गेज मोटा एम० एस० पाईप जिसका व्यास 3/4 इंच पारदर्शी पाली थीन (100 माइक्रान कैंची मोटा या अधिक) दो सूत (8 एम० एस०) मोटा और डेढ़ इंच लम्बे नट वोल्ट, मशीन स्क्रू 3/2" वेल्क्रो (चरचरी) और फेवीकाल (एस० आर० 998) की आवश्यकता होती है। सबसे पहले आधार फ्रेम बनाने के लिए एम० एस० पाइप के पाँच मीटर और ढ़ाई मीटर के दो-दो पीस हैण्डहैकसा पे काट लेना है। फिर चित्र के अनुसार कॉर्नर को लोहे की पत्तीको एल आकार में काटकर नट वोल्ट से फिट करते हैं। एम० एस० पाइप के 15 फीट लम्बे 6 पीस हैण्ड हेक्सा से काटकर उनके फिक्चर पर चढ़ाकर पहले हाथ से धीरे-धीरे दबा-दबा कर मोड़ते हैं फिर लकड़ी के हथौड़े से मार-मारकर अर्द्धचन्द्राकार शक्ल में बदल देते हैं यदि कोई कमी रह जाता है तो लकड़ी काटकर उस पर रखकर पाईप को उचित अद्धचन्द्राकार में लकड़ी के हथौड़े की मदद से बनाते हैं। इसी प्रकार सभी 6 पाईपों को मोड़ते हैं। पाईप मोड़ने के बाद इसके दोनों सिरों पर 2 × 3/4" आकार की छिद्र की हुई लोहे की पट्टियाँ गैस बेल्डिंग से जोड़ते हैं जो आधार क्रम से नट वोल्ट द्वारा फिट किया जाता है। मुड़े हुये अद्धचन्द्राकार पाईप को 6 बराबर हिस्सों में बांटकर 2 सूत का मुड़े पाईप में छिद्र बनाते हैं। आगे और पीछे लगाने वाले अर्द्धचन्द्राकार पाईप को दरवाजा और खाली स्थान को पाईपों से ही पालीथीन के जरिये आवश्यकतानुसार बनाया जाता है।

एम० एस० पाईप के एक मीटर लम्बे 25 पीस काटते हैं जिसके एक सिरे पर बेल्ट और दूसरे सिरे पर नट गैस वेल्डिंग द्वारा जोड़ते हैं जो बाद में अद्धचन्द्राकार पाईपों के बीच में चित्रानुसार फिट किये जाते हैं। इससे पॉली हाउस मजबूत होता है और पालीथीन को सहारा मिलता है। 100 माइक्रोन या इससे अधिक मोटी 16.4 फीट × 16.4 फीट पारदर्शी पालीथीन उपयोग में लाते हैं जिससे प्रकाश इसके अन्दर आसानी से जा सके। यदि पालनीथीन एक पीस में उपलब्ध हो तो स्प्रिटलैम्प की मदद से बीच में जोड़ देकर आवश्यकतानुसार आकार में तैयार कर ली जाती है। आगे और पीछे पालीथीन लगाने के लिये अर्द्धचन्द्राकार में काटते हैं जिसके लिए 3 मी० × 2 मी० के दोपीस काटते हैं फिर अद्धचन्द्राकार फ्रेम को रखकर 1" अतिरिक्त गोलाई में लेकर काट लेते हैं जो कि जोड़ने के समय दबाने के लिए आवश्यक होता है। ध्यान रहे नीचे की तरफ पालीथीन 3 इंच या इससे अधिक लेते हैं जो कि बाद में पाइप पर लपेटकर मशीन स्क्रु से फिर करने के लिए जरूरी है। पॉली हाउस का ढ़ाँचा तैयारहोने के बाद इस पर आयरन आक्साइड (मेटल प्रायमर) करना जरूरी होता है इससे जंग नहीं लगता। मेटल प्रायमर के बाद आवश्यक रंग का इनेमल पेन्ट करते हैं जिससे पॉली हाउस की आयु बढ़ जाती है और देखने में सुन्दर भी लगता है।

तैयार पालीथीन को तैयार फ्रेम पर चढ़ाकर मशीन स्कू से चारों तरफ से फ्रेम पर 6 एम० एम० का छि० करके (आवश्यकता अनुसार छिद्र) पालीथीन को कसा जाता है। अन्त में दरवाजे के ऊपर आयी पालीथीन को कैंची से काटकर दरवाजे का निकास बनाया जाता है। फिर दरवाजे के किनारे से 3 अतिरिक्त लम्बे पालीथीन लेकर दरवाजे का कवर बनाते हैं। 3 पालीथीन से बने दरवाजे के कवर के किनारे 6 की दूरी पर बेलक्रो (चरचरी) 3 लम्बे मेन भाग को फेविकाल (SR-998) चिपकाते हैं। इसी प्रकार वेलक्रो (चरचरी) के फीमेल भाग के 3 लम्बे टुकड़ेपाइप से बने दरवाजे के किनारे पर चढ़ी पालीथीन पर चिपकाते हैं ध्यान रहे वेलक्रो को चिपकाने से पहले पालीथीन की चिकनी सतह को सैण्ड पेपर या खुरदुरी चीज से रगड़ ले तब बेलक्रो अच्छी तरह फेवीकाल की मदद से पालीथीन से चिपकती है।

पूसा पॉलीहाऊस एम० एस० पाइप और नट वोल्टों की मदद से तैयार किया जाता है और पालीथीन को मशीन स्क्रू के मुख्य फ्रेम से कसा जाता है। इस तरह का पॉलीहाउस कहीं भी जाकर फिट किया जा सकता है और जब इसकी आवश्यकता न हो तो खोलकर रखा भी जा सकता है। इसके नट वोल्टों को तेल से चिकनाई कर दी जाए तो इस तरह पाली हाउस को अच्छे रख रखाव में पांच वर्ष तक उपयोग में लाया जा सकता है।

❑

अध्याय 22

ड्रिप सिंचाई प्रणाली

डा० आर सुरेश
मृदा एवं जल संरक्षण विभाग,
कृषि अभियंत्रण महाविद्यालय, पूसा

भारतीय कृषि में पारम्परिक सिंचाई विधियों में मुख्य रूप से बोर्डर विधि, बेसिन विधि, कूड विधि आदि का प्रयोग सदियों से किया जाता रहा है। जिसमें फसल की आवश्यकता से अधिक मात्रा में पानी के पटाव से वर्तमान में मृदा की पोषक तत्वों में कमी हो जाना, भूगर्भीय जल की सतह का काफी नीचे चला जाना, मिट्टी की उपजाऊ शक्ति का क्षीण हो जाना आदि त्रुटियों का उत्पन्न होना एक उदाहरण है।

सामान्तया पारम्परिक विधि में फसल को उसकी आवश्यकता से कहीं ज्यादा पानी दिया जाता है जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी का रेहीली हो जाना, भूमिगत जल स्तर का नीचे हो जाना, मृदा की उपजाऊ शक्ति में कमी होना आदि वर्तमान में साफ-साफ दिखाई पड़ने लगा है। देश के कुछ हिस्सों में भूमिगत जल स्तर इतना नीचे हो गया है कि पीने के लिए पानी नहीं मिल पाता है। इसी तरह से कृषि योग्य भू-भाग का एक बड़ा हिस्सा बेकार हो गया है, जिस पर खेती नहीं की जा सकती है। वर्तमान में इन उत्पन्न त्रुटियों पर ध्यान धीरे-धीरे अब हमारे कृषकों का जाने लगा है। साथ ही साथ सरकार द्वारा भी इन त्रुटियों को दूर करने हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार की परियोजनायें बनाना शुरू कर दी गई है। उदाहरण के तौर पर इस वर्ष (2005) भारत सरकार ने जल प्रबंधन हेतु टपकाव सिंचाई की परियोजना पर काफी अनुदान देने की घोषणा की है। हमारे देश के कुछ राज्यों जैसे महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा (कुछ भाग) आदि में टपकाव सिंचाई का प्रयोग कर कृषकगण काफी लाभान्वित हो रहे हैं।

उत्तरी बिहार का एक बड़ा क्षेत्रफल बागवानी की फसलों के लिए उपयोग किया जाता है, जिसमें लीची, आम, पपीता, केला आदि मुख्य है। वर्तमान परिपेक्ष में कृषकों को इन फसलों से उतना आमदनी नहीं मिल पाता है जितना मिलना चाहिए, जिसका अन्य कारणों की तुलना में वैज्ञानिक ढंग से सही समय पर सिंचाई न देना, एक मुख्य कारण है।

टपकाव सिंचाई एवं इसके अवयव

टपकाव सिंचाई एक बहुबारम्बारतीय सिंचाई की विधि है, जिसमें कम अन्तराल पर (गर्मियों में 1 दिन तथा ठंडक में 1 सप्ताह) आवश्यक पानी की मात्रा को पौधे के जड़ क्षेत्र में बूँद-बूँद के रूप में दिया जाता है। जो बाद में पौधों द्वारा उपयोग कर लिया जाता है। इस विधि से सिंचाई करने पर मृदा में नमी की कमी नहीं होने पाती है, जिससे पौधे का विकास समुचित रूप से होता है और फसल का उत्पादन काफी अच्छा होता है।

इस प्रणाली में फिल्टर (सैण्ड एवं स्कीन फिल्टर), पाईप लाईन (मुख्य, उप मुख्य एवं लेटरल) तथा ड्रिपर मुख्य अवयव होते हैं। इस प्रणाली में उर्वरक देने का भी प्रावधान होता है। फिल्टर, पानी में उपस्थित बाहरी अशुद्धियों जैसे खरपतवार, मिट्टी के कण आदि को छानने का कार्य करता है। मुख्य एवं उपमुख्य वाहरी अशुद्धियों जैसे खरपतवार, मिट्टी के कण आदि को छानने का कार्य करता है। मुख्य एवं उपमुख्य

पाईप लाईन प्लास्टिक पाईप के होते हैं, जो भूमि के नीचे लगभग 40-45 से.मी. की गहराई पर स्थापित किये जाते हैं। लेटरल पाईप लाईन भूमि के ऊपर पौधों के तने के पास से होता हुआ मुख्य/उपमुख्य पाईप लाईन से जुड़ा होता है। ड्रिपर पौधे के पास लेटरल पर लगाया जाता है।

टपकाव सिंचाई प्रणाली में सर्वप्रथम पम्प द्वारा पानी फिल्टर में जाता है, जहाँ पानी में उपस्थित अशुद्धियाँ छान दी जाती है, और साफ पानी मुख्य/उपमुख्य पाईप लाईन से होता हुआ, लेटरल एक उचित सान्द्रता का उर्वरक घोल तैयार किया जाता है, जिसे किसी बड़े बर्तन में रखकर बेन्चुरी द्वारा पौधों को दिया जाता है। उर्वरक देने की इस विधि को फर्टीगेशन कहते है।

टपकाव सिंचाई प्रणाली का प्रयोग

इस विधि का प्रयोग उन समस्त फसलों में सम्भव है, जो एक निश्चित अन्तराल पर लगाये जाते हैं। फिर भी बागवानी एवं सब्जियों की फसलों में इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। फलों में मुख्य रूप से आम, लीची, अमरूद, पपीता, केला, नीबू, तथा सब्जियों में परवल, फूलगोभी, पत्तागोभी, बैगन, टमाटर, भिण्डी आदि में काफी उपयोगी होता है। वर्तमान में इस विधि का प्रयोग गन्ने की खेती के लिए भी काफी उपयोगी पाया गया है।

लाभ

पारम्परिक सिंचाई की अपेक्षा टपकाव विधि के निम्नलिखित लाभ होते हैं :

1. 50 से 70 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है।
2. 30 से 40 प्रतिशत खाद की बचत की जा सकती है।
3. 35 से 50 प्रतिशत खरपतवार स्वत: कम हो जाता है।
4. 35 से 45 प्रतिशत मजदूरों की बचत की जा सकती है।
5. 25 से 30 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
6. टपकाव सिंचाई प्रणाली में घुलनशील उर्वरक, पोषक तत्व तथा कीड़े मकोड़े मारने की दवा देने की भी व्यवस्था होती है। जिसके द्वारा लागत खर्च में कमी की जा सकती है।
7. इस विधि से असमतल भूमि को सफलतापूर्वक सिंचित बनाया जा सकता है।
8. ऐसे भू-भाग जहाँ वर्षा जल पर ही खेती आश्रित है, वहाँ इस विधि का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
9. जहाँ पर भूमिगत जल स्तर काफी नीचे है और नलकूप आदि लगाना संभव नहीं है, उन स्थानों पर यदि तालाब आदि में पानी उपलब्ध है, जो टपकाव सिंचाई विधि का प्रयोग कर सब्जियों आदि की खेती सम्पन्न की जा सकती है।

स्थापना एवं इसका खर्च

टपकाव सिंचाई प्रणाली में मुख्य एवं उपमुख्य पाईप लाईन भूमि के अन्दर स्थापित किये जाते हैं, जबकि लेटरल पाईप जमीन पर पौधे के तने के पास से होता हुआ स्थापित किया जाता है। ड्रिपर लेटरल पाईप पर पौधे के तने के पास लगाया जाता है। मुख्य/उपमुख्य पाईप लाईन स्थापित करने हेतु 40 से 50 से.मी. गहरी नाली बनाई जाती है, जिसमें निश्चित माप की पाईप (मुख्य/उपमुख्य) को बिछा दिया जाता है। तत्पश्चात नाली में बिछाये पाईप से लेटरल पाईपों को पौधों की पंक्ति के अन्तराल पर जोड़ दिया जाता है। लेटरल पाईप के जोड़ने के उपरांत नाली को मिट्टी से ढंक कर समतल कर दिया जाता है। इसके बाद ड्रिपर को लेटरल पाईप पर पौधे के तने के पास लगा दिया जाता है। बाद में लेटरल पाईप के अंतिम छोर को स्टापर द्वारा बन्द कर दिया जाता है। अंत में स्थापित पाईप लाइन को टपकाव प्रणाली के संयंत्र से जोड़

कर, पम्प द्वारा सिंचाई की प्रक्रिया संपन्न की जाती है। सामान्यत: टपकाव सिंचाई प्रणाली हेतु 7 **एच०पी० का पम्प/ईन्जन पर्याप्त होता है।**

जहाँ तक प्रणाली के लागत खर्च की बात है, यह फसल के अन्तराल पर निर्भर करती है। उदाहरण तौर पर बागवानी की फसलों (फलों) में पेड़ एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी ज्यादा रखी जाती है, जिसके कारण कम मात्रा में लेटरल एवं ड्रिपर की आवश्यकता पड़ती है। फलस्वरूप कुल लागत खर्च कम हो जाता है, जबकि सब्जियों की फसलों में पौधे से पौधे एवं पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी कम रखी जाती है, जिसके कारण अधिक संख्या में लेटरल एवं ड्रिपर की आवश्यकता पड़ती है, परिणामस्वरूप लागत खर्च बढ़ जाता है। पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे के अन्तराल के आधार पर टपकाव सिंचाई प्रणाली की स्थापना में लागत व्यय को तालिका-1 में दर्शाया गया है।

तालिका-1 टपकाव सिंचाई प्रणाली का लागत खर्च

पंक्ति एवं पौध का अन्तराल	लागत खर्च (रुपया)
12 मी० × 12 मी०	20,500
10 मी० × 10 मी०	22,500
8 मी० × 8 मी०	25,500
6 मी० × 6 मी०	36,500
5 मी० × 5 मी०	38,500
4 मी० × 4 मी०	47,500
3 मी० × 3 मी०	44,000
3 मी० × 1.5 मी०	50,000
2.5 मी० × 2.5 मी०	49,000
2 मी० × 2 मी०	54,000
1.5 मी० × 1.5 मी०	73,000
1 मी० × 1 मी०	63,000
1.8 मी० × 1.5 मी०	61,000
1.8 मी० × 0.60 मी०	75,500
4.5 मी० × 2.7 मी०	43,000
2.7 मी० × 1.8 मी०	51,000

स्थापना खर्च : प्रणाली लागत खर्च का 5 प्रतिशत

टपकाव सिंचाई का प्रभाव

पारम्परिक सिंचाई की तुलना में टपकाव सिंचाई का प्रभाव फसल पर काफी सराहनीय होता है। प्रयोग के आधार पर विभिन्न फसलों में टपकाव सिंचाई के प्रभावों का उल्लेख नीचे किया गया है।

फसल उत्पादन

जैसा कि तालिका-2 में दिखाया गया है, पारम्परिक सिंचाई की अपेक्षा टपकाव सिंचाई के प्रयोग से फसल की उपज में काफी वृद्धि होती है। उदाहरण तौर पर सब्जियों की फसल, जैसे बैगन में 62.64 प्रतिशत, फूलगोभी में 60.23 प्रतिशत, मिर्चा में 49.97 प्रतिशत, करेला में 54.39 प्रतिशत, ककड़ी, में 45.16 प्रतिशत,

आलू में 69.2 प्रतिशत एवं टमाटर में 43.53 प्रतिशत की वृद्धि पायी गई । इसी प्रकार फलों, जैसे केला में 52.17 प्रतिशत, अंगूर में 23.11 प्रतिशत तथा पपीता में 76.92 प्रतिशत की उत्पादन में वृद्धि पायी गई। टपकाव सिंचाई के प्रयोग से फसल उत्पादन में वृद्धि का मुख्य कारण फसल को कम अन्तराल पर आवश्यक सिंचाई जल की आपूर्ति करना है। कम अन्तराल पर सिंचाई करने से मृदा में नमी की कमी नहीं होने पाती है, और फसल का समुचित विकास होता है, जिसका प्रभाव फसल उत्पादन पर काफी अच्छा पड़ता है।

सिंचाई जल की बचत

पारम्परिक विधि की तुलना में टपकाव सिंचाई विधि से काफी मात्रा में सिंचाई जल की बचत की जा सकती है। तालिका-2 में पारम्परिक सिंचाई की तुलना में टपकाव सिंचाई के प्रयोग से विभिन्न फसलों में सिंचाई जल की बचत को दिखाया गया है, जिसके अनुसार टपकाव सिंचाई द्वारा बैगन में 61.9 प्रतिशत, फूलगोभी में 33.33 प्रतिशत, मिर्चा में 61.74 प्रतिशत, करेला में 79.10 प्रतिशत, ककड़ी में 55.56 प्रतिशत, प्याज में 50 प्रतिशत, आलू में 55 प्रतिशत, मूली में 76.10 प्रतिशत, शकरकन्द में 60.32 प्रतिशत टमाटर में 78.51 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है। इसी प्रकार केला में 48.89 प्रतिशत, अंगूर में 47.2 प्रतिशत पपीता में 68 प्रतिशत तथा तरबूजा में 65 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है।

जल उपयोग क्षमता

फसल की जल उपयोग क्षमता (क्विंटल/हे./सेमी) पर भी टपकाव सिंचाई का काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। गणना के आधार पर प्राप्त, पारम्परिक एवं टपकाव सिंचाई द्वारा विभिन्न फसलों की जल उपयोग क्षमता को तालिका-2 में दिखाया गया है। जिससे यह विदित होता है कि टपकाव सिंचाई के प्रयोग से बैगन की फसल में 318.20 प्रतिशत, फूलगोभी में 141.27 प्रतिशत, मिर्चा में 284.62 प्रतिशत, करेला में 614. 29 प्रतिशत, ककड़ी में 224.14 प्रतिशत, प्याज में 140 प्रतिशत, आलू में 265.52 प्रतिशत, मूली में 378. 26 प्रतिशत, शकरकन्द में 258.2 प्रतिशत एवं टमाटर में 567.74 प्रतिशत जल उपयोग क्षमता में बृद्धि प्राप्त की गई। जब कि फलों, जैसे केला, अंगूर, पपीता, तथा तरबूजा में क्रमशः 175.23, 132, 433 एवं 242. 37 प्रतिशत की बृद्धि पायी गई।

उपरोक्त परिणामों के अनुसार निःसंदेह टपकाव सिंचाई विधि पारम्परिक सिंचाई विधि की तुलना में काफी अच्छा होता है। इसके प्रयोग से न केवल फसल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि उपज की गुणवत्ता भी काफी अच्छी होती है। साथ ही साथ उर्वरक की बचत, खरपतवार पर नियंत्रण एवं मजदूरी की काफी बचत भी होती है। खासकर ऐसे जगहों के लिए, जहाँ पर भूमिगत जल काफी नीचे होता है, और लनकूप आदि लगाना संभव नहीं होता है, उन जगहों पर कुएँ, तलाब या छोटे आकार के गड्ढों में पानी एकत्र कर, इस विधि से बागवानी एवं सब्जियों की खेती सफलतापूर्वक सम्पन्न की जा सकती है।

❑

नीम की फली से कीटनाशी बनाना

एक किलोग्राम नीम बीज को धूल के रूप में परिवर्तित किया जाता है। इस धूल को 20 लीटर पानी में डालकर मिला दिया जाता है। 10-12 घंटा पानी में भिगोने के बाद घोल को अच्छी तरह से मिलाकर छान लिया जाता है। छानने के बाद घोल में 20 ग्राम कपड़ा धोने वाला साबुन का घोल मिलाया जाता है। उसके बाद छिड़काव किया जाना चाहिए। इसके छिड़काव से अनेक प्रकार के कीड़ों की रोकथाम की जा सकती है।

बागवानी विकास की योजनायें

(क) राष्ट्रीय बागवानी मिशन तथा मुख्यमंत्री बागवानी मिशन

1. मशरूम

(क)	स्पॉन, खाद उत्पादन तथा प्रशिक्षित हेतु एकीकृत मशरूम	50 लाख प्रति युनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र हेतु आधारभुत ढांचे पर व्यय के लिए क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत ।
(ख)	स्पॉन बनाने की यूनिट	15 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत।
(ग)	खाद बनाने की यूनिट	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु लागत का 100 प्रतिशत और निजी क्षेत्र के मामले में क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता के रूप में लागत का 50 प्रतिशत।
2. फूल (प्रति लाभग्राही अधिकतम 2 हेक्टेयर हेतु)			
(क)	कटे फूल	70,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर	छोटा तथा सीमान्त (एस एण्ड एम) किसानों को लागत का 50% और अन्य श्रेणी के किसानों को 33% जोकि एस एण्ड एम किसानों हेतु अधिकतम 35,000 रुपए प्रति हेक्टेयर और अन्य श्रेणी के किसानों हेतु 23,100/- रुपए प्रति हेक्टेयर होगा।
(ख)	कंदीय फूल	90,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर	छोटे तथा सीमान्त किसानों किसानों को लागत का 50% और अन्य श्रेणी के किसानों को 33% जोकि एस एण्ड एम किसानों हेतु अधिकतम 45,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर और अन्य श्रेणी के किसानों हेतु 29,700/- रुपए प्रति हेक्टेयर होगा।
(ग)	खुले फूल	24,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	छोटे तथा सीमान्त किसानों को लागत का 50% और अन्य श्रेणी के किसानों को 33% जोकि एस एण्ड एम किसानों हेतु अधिकतम 12,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर और अन्य श्रेणी के किसानों हेतु 7,920/- रुपए प्रति हेक्टेयर होगा।
3. मसाले (प्रति लाभग्राही अधिकतम 4 हेक्टेयर क्षेत्रफल हेतु)			
(क)	बीज मसाले तथा रीझोमेटिक प्रजातियाँ	25,000/- रुपये प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 12,500/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री और आईएनएम/आईपीए में आदि हेतु सामग्री की लागत पर व्यय की पूरा करने के लिए लागत का 50%)
(ख)	बारहमासी मसाले (काली मिर्च, दालचीनी लाँग तथा जायफल)	40,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	अधिकतम 20,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर (बागान सामग्री और आईएनएम/आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर व्यय को पूरा करने के लिए लागत का 50%)

4. सुगंधित पौधे (प्रति लाभग्राही अधिकतम 4 हेक्टेयर क्षेत्रफल हेतु)		
(क) लागत प्रधान सुगंधित पौधे (पटचोली, जिरेनियम, रोजमेरी आदि)	75,000/- रुपए प्रति	लागत का 50% या 37,500/- रुपए प्रति हेक्टेयर की अधीन बागान सामग्री तथा आई एनएम/आर्थपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर होने वाले व्यय को पूरा करने हेतु।
(ख) अन्य सुगंधित पौधे	25,000/- रुपए प्रति हेक्टेयर	लागत का 50% या12,500 रुपए प्रति हेक्टेयर की अधिकतम सीमा की अधीन, बागान सामग्री तथा आईएनएम/ आईपीएम आदि हेतु सामग्री की लागत पर होने वाले व्यय को पूरा करने हेतु।
5. जल स्त्रोतों का सृजन (क) प्लास्टिक/आरसीसी लाइनिंग के साथ खेत के तालाबों/ खेत के पानी भंडारों पर सामुदायिक टैंक	मैदानी क्षेत्रों में 15 लाख रुपए प्रति युनिट, पहाड़ी क्षेत्रों में 17.25 लाख रुपए प्रति युनिट	इस नरेगा के साथ क्रियान्वित किया जाएगा 100 मीटर × 100 मीटर × 3 मीटर के तालाब आकार अथवा किसी छोटे आकार के साथ 10 हेक्टेयर के कमांड क्षेत्रफल हेतु प्रो-राटा आधार पर लागत का 100% जोकि कमांड क्षेत्र, स्वामित्व तथा प्रबंधन समुदाय/किसान समूह द्वारा किए जाने पर निर्भर करेगा। काली कपास मिट्टी वाले क्षेत्रों में गैर लाइन वाले तालाबों/ टंकियों में लागत 33% कम होगी। एनएचएम के अंतर्गत सहायता प्लास्टिक/आरसीसी लाइनिंग की लागत तक सीमित है। तथापि, गैर, मनरेगा लाभग्राहियों हेतु एनएचएम के अंतर्गत लाइनिंग की लागत सहित तालाब/टैंक के निर्माण की समूची लागत पर सहायता प्राप्त की जा सकती है।
(ख) व्यक्तियों हेतु जल संचयन प्रणाली 20 मीटर × 3 मीटर तालाब/खोदे गए कुंए 100/-रुपए घनमीटर की दर से।	मैदानी क्षेत्रों में 1.20 लाख रुपए प्रति यूनिट, पहाड़ी क्षेत्रों में 1.38 लाख रुपए प्रति यूनिट जो अधिकतम 2 हेक्टेयर कमांड क्षेत्र हेतु है।	लाइनिंग सहित लागत का 50%। छोटे आकार के तालाब/ तालाब/खोदे कुँए में लागत प्रो-राटा आधार पर देय होगी। यह भी नरेगा के साथ होगी। अनुरक्षण लाभग्राही द्वारा सुनिश्चित किया जायगा।
6. संरक्षित कृषि		
1. ग्रीन हाउस ढांचा		
(क) पंखा तथा पैड प्रणाली	1465/- रुपए प्रति वर्ग मीटर प्रति	लाभग्राही 1000 वर्ग मीटर तक सीमित लागत का 50%
(ख) प्राकृतिक वातायन प्रणाली		
(1) टयूब्यूलर ढांचा	935/- रुपए प्रति वर्ग मीटर प्रति	प्रति लाभग्राही 1000 वर्ग मीटर तक सीमित लागत का 50%

(2) लकड़ी का ढांचा	515/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्गमीटर तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 500 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
(3) बांस का ढांचा	375/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
2. प्लास्टिक मलचिंग	20,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	प्रति लाभग्राही 2 हेक्टेयर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
3. छायादार जाली गृह		
(1) ट्यूब्यूलर ढांचा	600/- रुपए प्रति वर्ग मीटर प्रति	लाभग्राही 1000 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
(2) लकड़ी का ढांचा	410/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
(3) बांस का ढांचा	300/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 5 इकाइयों तक सीमित लागत का 50% (प्रत्येक यूनिट 200 वर्गमीटर से अधिक की न हों)
4. प्लास्टिक टनल	30/- रुपए / वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 1000 वर्ग वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
5. पक्षी-रोधी/वृष्टि-रोधी जाली	20/- रुपए प्रति	प्रति लाभग्राही 5000 वर्गमी. तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
6. पॉली हाउस में उगाई गई उच्च मूल्य सब्जियों की बागान सामग्री की लागत	105/- रुपए प्रति वर्ग मीटर	प्रति लाभग्राही 500 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का
7. पॉली हाउस में उगाए गए फूलों की बागान सामग्री की लागत	500/- प्रति रुपए प्रति वर्ग	लाभग्राही 500 वर्गमीटर तक सीमित कुल लागत का 50 प्रतिशत
6. सटीकता कृषि विकास केन्द्रों (पीएफडीसी) के माध्यम से सटीकता कृषि विकास तथा विस्तार	परियोजना आधारित	पीएफडीसी को लागत का 100%
7. एकीकृत पोषण प्रबंधन (आईएनएम)/एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) का संवर्धन		
(1) सेनेट्री तथा फाइटो आधारभूत ढांचा (सार्वजनिक क्षेत्र)	500 लाख रु० प्रति यूनिट	लागत का 100%
(2) आईपीएम/ आईएनएम का संवर्धन	2000/- रुपए प्रति हेक्टेयर	प्रति लाभग्राही 4 हेकटेयर की सीमा तक अधिकतम 1000/- रुपए प्रति हेक्टेयर के अधीन लागत का 50%
(3) रोग पूर्वानुमान यूनिट (सार्वजनिक क्षेत्र)	4 लाख रुपए रुपए प्रति यूनिट	अधिकतम 4 लाख रुपए प्रति यूनिट

(4)	जैव-नियंत्रण प्रयोगशाला	80 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 80 लाख रुपए प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र को परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 40.00 लाख रुपए।
(5)	पौधा स्वास्थ्य क्लीनिक	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 20 लाख रुपए प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र को परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 10.00 लाख रुपए।
(6)	पत्ती/टिशु विश्लेषया प्रयोगशाला	20 लाख रुपए प्रति यूनिट	सार्वजनिक क्षेत्र हेतु 20 लाख प्रति यूनिट और निजी क्षेत्र का परियोजना आधारित क्रेडिट संयोजित आर्थिक सहायता के रूप में 10.00 लाख रुपए।
8.	**जैविक कृषि**		
(1)	जैविक कृषि को अपनाना	20,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	लागत का 50% जो कि प्रति प्रति लाभग्राही 4 हेक्टेयर के अधिकतम क्षेत्र हेतु 1000/- रुपए प्रति हेक्टेयर तक सीमित है जो तीन वर्षों की अवधि का फैला हुआ है। जिसमें पहले वर्ष 4,000/- रुपए और दूसरे तथा तीसरे वर्ष प्रत्येक में 3,000/- रुपये की सहायता अंतरगत है। कार्यक्रम को प्रमाणीकरण के साथ संयोजित किया जाना है।
(2)	आर्गेनिक प्रमाणीकरण	परियोजना आधारित	50 हेक्टेयर के एक क्लस्टर हेतु 5 लाख रुपए जिसमें पहले वर्ष में 1.50 लाख रुपए दूसरे वर्ष में 1.50 लाख रुपए और तीसरे वर्ष में 2.00 लाख रुपए शामिल है।
(3)	वर्मी खाद यूनिट/ आर्गेनिक आदान उत्पादन यूनिट	स्थायी ढांचे हेतु 60,000/- रु० प्रति यूनिट और एचडीपीई वर्मीबेड हेतु 10,000/- रु०	स्थायी ढांचे के 30"×8"×2-5" आयाम की इकाई के आधार के अनुरूप लागत का 50% जिसे प्रो-राटा आधार पर प्रशासित किया जाना है। एचडीपीई वर्मीबेड हेतु 96 सीएफटी (12'×4'×2') के आकार की पुष्टि वाली लागत का 50% जिसे प्रो-राटा आधार पर प्रशासित किया जाना है।
9.	अच्छे कृषि व्यवहारों (जीएपी) हेतु प्रमाणीकरण, आधारभूत, ढांचे सहित	10,000/- रु० प्रति हेक्टेयर	लागत का 50%
10.	**मधुमक्खी पालन माध्यम से मकरंदीय समर्थन**		
(क)	न्यूक्लियस स्टाक का उत्पादन (सार्वजनिक क्षेत्र)	10 लाख रुपए	लागत का 100%
(ख)	मधुमक्खी ब्रीडर द्वारा मधुमक्खी कालोनियों का उत्पादन	6 लाख रुपए	न्यूनतम 2000 कॉलोनी प्रति वर्ष उत्पादन हेतु लागत का

(ग) मधुमक्खी कोलोनी	4 फ्रेम वाली प्रति कालोनी हेतू 1400/- रुपये	प्रति लाभग्राही 50 कालोनियों तक सीमित लागत का 50%
(घ) छत्ते	प्रति छत्ता 1600/- रुपये	प्रति लाभ्रग्राही 50 कालोनियों तक सीमित होने तक लागत का 50%
(ङ) शहद निकाले वाले (4 फ्रेम) फूड ग्रेड कंटेनर (30 किलो), जाली आदि सहित उपकरण	प्रति सेट 14,000/- रुपए	प्रति लाभ एक सेट सीमित होने तक लागत का 50%
11. बागवानी मशीनीकरण		
(क) विद्युत चालित मशीन/ उपकरण जिसमें विद्युत आरी तथा संयंत्र बचाव उपकरण आदि शामिल है।	35,000/- रुपए प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(ख) रोटावेयर / उपकरण के साथ विद्युत मशीनें (20 बीएचपी तक)	1.20 लाख रुपय प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(ग) विद्युत मशीनें (20 एचपी तथा उससे अधिक) एस्सेसरीज/ उपकरण सहित	3/- लाख रुपए प्रति सेट	प्रति लाभग्राही एक सेट के सीमित होने तक लागत का 50%
(घ) प्रदर्शन प्रयोजन हेतु बागवानी के लिए नई मशीनों तथा उपकरणों का आयात (सार्वजनिक क्षेत्र)	50/- लाख रुपए प्रति मशीन	कुल लागत का 100%
12. प्रदर्शन/फ्रंट लाइन प्रदर्शन (एफएलडी) के माध्यम से टेकनोलोजी प्रसार	25/- लाख रुपए	किसानों के खेतों में लागत का 75% और सार्वजनिक क्षेत्र आदि के स्वामित्व वाले फार्मों में लागत का 100%
13. मानव संसाधन विकास (एचआरडी)		
(क) पर्यवेक्षकों तथा उद्यमियों हेतू एचआरडी	20/- लाख रुपए प्रति प्रशिक्षण	पहले वर्ष में लागत का 100% बाद के वर्षों में आधारभूत ढांचे की लागत का दावा नहीं किया जाएगा।

(ख) मालियों हेतु एचआरडी	15/ लाख रुपए प्रति प्रशिक्षण	पहले वर्ष में लागत का 100% बाद के वर्षों में आधारभूत ढांचे की लागत का दावा नहीं किया जाएगा।
(ग) किसानों का प्रशिक्षण		
(1) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 400/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(2) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 750/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(3) राज्य के बाहर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 1000/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(घ) किसानों का परिभ्रमण दौरा		
(1) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 250/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(2) जिले के भीतर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 300/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(3) राज्य के बाहर	परिवहन के अतिरिक्त प्रति किसान 600/- रुपए प्रतिदिन	लागत का 100%
(4) भारत से बाहर	प्रति प्रतिभागी 3 लाख रुपए	परियोजना आधारित। वायु/रेल यात्रा लागत का 100%
(ङ) तकनीकी स्टाफ/फील्ड कार्यकारियों का प्रशिक्षण/अध्ययन दौरा		
(1) राज्य के भीतर	प्रति प्रतिभागी 200/- रुपए प्रति दिन जमा देय होने के अनुसार यात्रा व्यय/ दैनिक व्यय	लागत का 100%

(2) प्रगामी राज्यों/ इकाईयों अध्ययन दोरा (न्यूनतम 5 प्रतिभागियों समूह)	प्रति प्रतिभागी 650/- रुपये प्रति दिन जमा देय होने के अनुसार यात्रा व्यय/दैनिक व्यय	लागत का 100%
(3) भारत से बाहर	प्रति प्रतिभागी 5 लाख रुपए	वास्तविक आधार पर लागत का 100%
ग. एकीकृत कटाई पश्चात प्रबंधन		
(1) पैक हाउस/फार्म पर एकत्रीकरण तथा भण्डारण युनिट	9 मीटर × 6 मीटर आकार वाली / यूनिट हेतू 3 लाख रु०	पूंजीगत लागत का लागत का 50%
(2) प्री-कूलिंग यूनिट	6 एमटी क्षमता हेतु 15 लाख रुपए	पृथक उद्यमियों हेतु सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता।
(3) मोबाइल प्री-कूलिंग यूनिट	5 एमटी क्षमता हेतु प्रति यूनिट 24 लाख रुपए	- वही -
(4) कोल्ड स्टोरेज यूनिट (निर्माण) / विस्तार/ आधुनिकीकरण	5000 एमटी क्षमता हेतु प्रति एमटी 6,000 रुपये	सामान्य क्षेत्रों में परियोजना की लागत के 40 प्रतिशत और पहाड़ी तथा अनुसूचित क्षेत्रों में 55 प्रतिशत की दर से क्रेडिट संयोजित परियोजना आधारित आर्थिक सहायता केवल उन्हीं यूनिटों के संबंध में जो नई तकनीकों को अपनाती हैं, जो कि इन्सूलेशन, आर्द्रता नियंत्रण तथा मल्टी चैम्बर के साथ फिन काइल कूलिंग प्रणाली के प्रावधान सहित उर्जा दक्ष हैं। विभाग द्वारा जारी तकनीकी मानक, पैरामीटर तथा प्रोटोकॉल अपनाए जाऐं।
(5) सीए/एमए भण्डारण यूनिट	5000 एमटी क्षमता हेतू प्रति एमटी 32,000 रुपए	- वही -
(6) रेफर वैन / कंटेनर	6 एमटी क्षमता हेतू प्रति एमटी 24 लाख रुपए	- वही -

(7) प्राथमिक/ मोबाईल/न्यूनतम प्रसंस्करण यूनिट	24 लाख रुपए प्रति यूनिट	– वही –
(8) पकाने वाला चैम्बर	5000 एमटी क्षमता हेतु प्रति एमटी 6,000 रुपए	– वही –
(9) ईवैपोरेटिव/ कम उर्जा वाला शीत चैम्बर (8 एमटी)	4 लाख रुपए प्रति यूनिट नई यूनिट हेतु 2	कुल लागत का 50 प्रतिशत कुल लागत का 50 प्रतिशत
(10)बचाव यूनिट (निम्न लागत)	लाख रुपए प्रति यूनिट और उन्नयन हेतु 1 लाख रुपए प्रति यूनिट	
(11) निम्न लागत प्याज भण्डारण ढांचा (25 एमटी)	1 लाख रुपए प्रति यूनिट	कुल लागत का 50 प्रतिशत प्रतिशत
(12) पूसा शून्य ऊर्जा ठण्डा (100 किग्रा.)	4000 रुपए प्रति यूनिट	कुल लागत का 50 प्रतिशत

(॥) राष्ट्रीय औषधीय पादप मिशन		
प्रमुख कार्यक्रम एवं अनुदान का विवरण		
क. कार्यक्रम	**आँकलित लागत**	**स्वीकार्य अनुदान**
1. नर्सरी प्लांटि मेटोरियल का उत्पादन क) लोक क्षेत्र 1. मॉडल नर्सरी (4हे.) 2. छोटी नर्सरी (1 हे.)	 रु. 20 लाख रु. 4 लाख	 अधिकतम रु. 20 लाख अधिकतम रु. 4 लाख
ख) निजी नर्सरी 1. मॉडल नर्सरी (4हे.) 2. छोटी नर्सरी (1हे.)	 रु. 20 लाख रु. 4 लाख	 लागत का 50 प्रतिशत रु. 10 जरचर कर अधिकतम सीमा तक लागत का 50 प्रतिशत रु. 2 लाख की अधिकतम सीमा तक
2. कृषि 1) आयुष उद्योग के द्वारा अधिक मांग वाली एवं अधिक संकटापन्न वनस्पति प्रजातियां	 परिशिष्ट-। व ।। के अनुसार	 कृषि लागत का 75 प्रतिशत
2) पौध प्रजातियां जो कि संकटापन्न एवं जिनके आपूर्ति स्त्रोत घट रहे हैं।	परिशिष्ट-। व ।। के अनुसार	कृषि लागत का 50 प्रतिशत
3) आयुष उद्योग की मांग एवं निर्यात के लिए अन्य पौध प्रजातियां।	परिशिष्ट-। व ।। के अनुसार	कृषि लागत का 20 प्रतिशत
4) परिशिष्ट-।। की सूची के अनुसार 93 पौधों के लिए अनुदान का भारित औसत ।		30 प्रतिशत
3. विदोहन उपरांत प्रबंधन 1) शुष्किकरण शेड्स	 रु. 5 लाख	 स्व सहायता समूह/सहकारी लोक क्षेत्र के लिए 100 प्रतिशत अनुदान एवं निजी क्षेत्र के लिए 50 प्रतिशत
2) भण्डारण गोदाम सह प्राथमिक प्रसंस्करण इकाई	रु. 5 लाख	स्व. सहायता समूह/सहकारी/लोक क्षेत्र के लिए 100 प्रतिशत अनुदान एवं निजी क्षेत्र के लिए 50 प्रतिशत

4. प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन		
1) प्रसंस्करण इकाई	रु. 200 लाख अधिकतम सीमा रु. 50 लाख	परियोजना लागत का 25 प्रतिशत
2) परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना	रु. 100 लाख	परियोजना लागत का 30 प्रतिशत अधिकतम सीमा रु. 30 लाख
3) विपणन प्रोत्साहन	रु. 10 लाख	परियोजना लागत का 50 प्रतिशत
4) बाजार आसूचना	परियोजना आधारित	परियोजना आधारित
5) वापसी खरीदी हस्तक्षेप	परियोजना आधारित	परियोजना आधारित
6) विपणन अधो ढांचा	ग्रामीण मण्डी के लिए–रु. 10 लाख जिला मण्डी के लिए–रु. 200 लाख	परियोजना आधारित, स्वयं सहायता समूह/सहकारी / लोक क्षेत्र के लिए 100 प्रतिशत अनुदान
7) परीक्षण शुल्क/ प्रतिपूर्ति	रु. 5 हजार की अधिकतम सीमा तक परीक्षण शुल्क का 50 प्रतिशत	
8) आर्गेनिक/गुड एग्रीकल्चरल प्रैक्टिस प्रमाणीकरण	50 हे. के लिए रु. 5 लाख	एन.एच.एम. अनुसार
9) फसल बीमा	50 प्रतिशत प्रीमियम पर	अधिकतम 5000 रु.

◆ औषधीय पादप मिशन कार्यक्रमों का कार्यान्वयन किसान/किसान सहकारी सोसाइटी, गैर सरकारी संगठन, उत्पादक संघ, स्वयं सहायता समूह, राज्य सरकार के संस्थान व अन्य संगठन द्वारा किया जा सकता है।

(iii) बिहार के लिए चयनित औषधीय पादप प्रजातियों का प्रति इकाई मूल्य सारांश

20 प्रतिशत अनुदान हेतु पात्र NMPB स्कीम के अंतर्गत विकास एवं कृषि के लिए प्राथमिककृत पदपों की सूची		**लागत मानदण्ड प्रति हे० (रुपयों में)**
1. Acorus clanmus / Buch	बच	65000/ha
2. Aloevera/Ghrit Kumari	धत कुमारी	42500/ha
3. Andrographis Paniculata/Kalmegh	कालमेघ	25000/ha
4. Asparagus recemosus/Shatawar	सतावर	62500/ha
5. Bacopa monieri/Centella asiatica (Brahmi)	ब्राह्मी	40000/ha
6. Chlorophytam borivillianum/Shwet	सफेद मुसली	312500/ha
7. Artemisia annua Linn.	आर्टिमिशिया	
8. Embelica Officinals Amla	आंवला	65000/ha
9. Gymnema Sylvestris/Gudmar	गुड़मार	25000/ha
10. Ocimum Sanstum	तुलसी	30000/ha
11. Piper longum	पिपली	62500/ha
12. Stevia rebaudiana/Madhukari	स्टीविया	312500/ha
13. Withenia somnifera/Ashwagandha	अश्वगंध	25000/ha
14. Cynomonum Species (Tejpat/Dalchihi)	तेजपात/दालचीनी	77500/ha
15. Coleus species (Patharchur etc.)	पत्थरचूर	43000/ha
50% प्रतिशत अनुदान के लिए पात्र पौध प्रजातियां		
1. Aegle marmelos/Bael	बेल	40000/ha
2. Reuwolfia serpentina/Sarpgandha	सर्पगंधा	62500/ha
3. Plumbago zeylanica	चित्रक	
4. Gloriosa superba/Kalihari	कलिहारी	137500/ha
75% प्रतिशत अनुदान के लिए पात्र पौध प्रजातियां		
1. Commiphora wighti/Guggal	गुग्गल	160000/ha

(iv) राष्ट्रीय बांस मिशन

बिहार के 10 जिलों यथा जुमई, सुपौल, मुंगेर, प० चम्पारण, मुजफ्फरपुर, बांका, सहरसा, नालंदा, कटिहार एवं दरभंगा में केन्द्र सम्पोषित बांस मिशन योजना वर्ष 2007-2008 के जनवरी माह से लागू की गई है। इस योजना के तहत दी जाने वाली सहायतानुदान की विवरणी इस प्रकार है। यह योजना कृषि विभाग एवं जन विभाग द्वारा संयुक्त रूप से चलायी जाती है। जिसमें कृषि विभाग नोडल विभाग है।

क्र. सं.	कार्यक्रमय	अनुमानित लागत	अनुदान का विवरण
1	2	3	4
बाँस रोपण का विकास			
1.	बाँस रोपण सामग्री (वन क्षेत्र)		
	क) केन्द्रीयकृत नर्सरी		
	(i) सार्वजनिक क्षेत्र (0.25 हे.)	2.73 लाख	लागत का 100% (अधिकतम 2.73 लाख/नर्सरी)
	ii) निजी क्षेत्र (0.25 हे.)	2.73 लाख	लागत का 25 प्रतिशत (अधिकतम 68,000 रुपये प्रति नर्सरी क्रेडिट लिंक बैंक एन्डेड अनुदान)
	ख) निजी क्षेत्र की नर्सरी		
	i) किसान नर्सरी (0.10 हे.)	26000 रुपये /इकाई	लागत का 25 प्रतिशत (अधिकतम 6,500 रुपये प्रति नर्सरी) लागत का 25 प्रतिशत (अधिकतम 6,500 रुपये प्रति नर्सरी)
	(ii) महिला नर्सरी (0.10 हे.)	2600 रुपये /इकाई	
2.	**बाँस रोपण सामग्री (गैर वन क्षेत्र)**		
	क) केन्द्रीयकृत नर्सरी		
	i) किसान नर्सरी (0.10 हे.)	26000 रुपये /इकाई	लागत का 25 प्रतिशत (अधिकतम 6,500 रुपये प्रति नर्सरी)
	(ii) महिला नर्सरी (0.10 हे.)	2600 रुपये /इकाई	लागत का 25 प्रतिशत (अधिकतम 6,500 रुपये प्रति नर्सरी)
3.	बाँस रोपण सामग्री प्रमाणीकरण के लिए राशि	परियोजना आधारित	सार्वजनिक/निजी क्षेत्र के संस्थानों के करण के लिए राशि लिए 100 प्रतिशत सहायकता
4.	क. टिशु कल्चर इकाई सर्वजनिक क्षेत्र	21 लाख/इकाई	सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई के लिए 100 (सार्वजनिक क्षेत्र) प्रतिशत (अधिकतम 21 लाख
	ख. टिशु कल्चर इकाई निजी क्षेत्र	21 लाख/इकाई	लागत का 50 प्रतिशत (अधिकतम) 10.50 (निजी क्षेत्र लाख) क्रेडिट लिंग बैंक एन्डेड अनुदान (उत्तर-पूर्वी क्षेत्र के विकास हेतु टेकनोलाजी मिशन के समान)

5. क्षेत्र विस्तार (बंदी वृक्षारोपण)		
क. वन क्षेत्र ख. गैर वन क्षेत्र	25000 रुपये/हे० 16000 रुपये/हे०	100 प्रतिशत दो बराबर किस्तों में (50:50) लागत का 50 प्रतिशत (अधिकतम) 8000 रुपये प्रति हे. तथा 4 हे. प्रति लाभार्थी)
6. उपलब्ध स्टॉक का विकास	8000 रुपये/हे०	100 प्रतिशत, गैर वन क्षेत्र में, 4 हे० प्रति लाभाथी तक सीमित

- ❑ बिहार राज्य बाँस मिशन वन क्षेत्र एवं गैर वन क्षेत्र के दस जिलों यथा मुंगेर, बाँका, जमुई, नालंदा, मुजफ्फरपुर, पश्चिम चम्पारण, दरभंगा, सहरसा, सुपौल एवं कटिहार जिलों में लागू है।
- ❑ बाँस उत्पादक किसान जिला उद्यान पदाधिकारी/प्रखंड कृषि पदाधिकारी/क्षेत्र सलाहकार से आवेदन प्राप्त कर सकते हैं।

(v) सूक्ष्म सिंचाई योजना

''यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना हे। इसके अन्तर्गत ड्रिप और स्प्रींकलर सिंचाई पद्धति को शामिल किया गया है। ड्रिप और स्प्रींकलर सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने पर गुणवत्तापूर्ण उपज प्राप्त होने के साथ ही उपज में 25-30 प्रतिशत वृद्धि और सिंचाई लागत में कमी आती है। योजना में 40 प्रतिशत अनुदान भारत सरकार और 50 प्रतिशत अनुदान राज्य सरकार, कुल 90 प्रतिशत अनुदान देय है। अनुदान की गणना भारत सरकार के मार्गदर्शिका में अंकित मूल्य के आधार पर की जायेगी।

यह योजना राज्य के सभी जिलों में चलाई जा रही है और योजना का कार्यान्वयन जिला पदाधिकारी की अध्यक्षता में गठित जिला स्तरीय सूक्ष्म सिंचाई समिति द्वारा किया जा रहा है। योजना के सम्बन्ध में अधिक जानकारी के लिाए जिला के जिला कृषि पदाधिकारी एवं जिला उद्यान पदाधिकारी से सम्पर्क किया जा सकता है।

किसान	**केन्द्रीय सूक्ष्म सिंचाई मिशन से देय अनुदान**			
	केन्द्रांश	**राज्यांश**	**कुल**	**लाभार्थी द्वारा देय**
लघु एवं सीमांत	50%	40%	90%	10%
अन्य	40%	40%	80%	20%

विशेष उद्यानिकी फसल योजना

इस योजना का कार्यान्वयन परियोजना निदेशक, आत्मा द्वारा किया जायेगा। प्रत्येक जिला के लिए एक फसल चिन्हित किया गया है। जिसके विकास के लिए विभिन्न मदों से परियोजना निदेशक, आत्मा द्वारा राशि प्राप्त की जायेगी।

स्वीकृत्यादेश में पपीता, पान, केला (टिश्यू कल्चर), आँवला, बेल, बेर, कटहल, शरीफा, जामुन, सहजन, नारियल का क्षेत्र विस्तार, कटे फूल, कन्द वाले फूल, खुले फूल, मसाले, सगन्धीय पौधे, औषधीय पौधे, जीर्णोद्धार, चलन्त/स्थिर प्रशीतन सुविधा के साथ ठेला, प्रसंस्करण सुविधा के लिए राष्ट्रीय बागवानी मिशन से देय अनुदान राशि के अतिरिक्त राज्य योजना से अनुदान राशि की व्यवस्था की गयी है। अधिकतम 90% अनुदान की राशि ही देय होगा।

जिलों के लिए चिन्हित उद्यानिकी फसल एवं विकसित किये जाने वाले अवयव निम्नानुसार हैं :–

क्रम	जिला का नाम	चिन्हित फसल	अवयव	कुल अनुदान
1	पूर्वी चम्पारण	लहसून	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
2	प0 चम्पारण	हल्दी एवं मेंथा	क्षेत्र विस्तार (हल्दी)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (मेंथा)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
3	मुजफ्फरपुर	लीची	जीर्णेद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत ठेला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			मसाला की अंतर्वर्ती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
4	वैशाली	केला (टिश्यू कल्चर)	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 74883/– रुपये
5	समस्तीपुर	हल्दी	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
6	दरभंगा	आम एवं मसाला की अंतर्वर्त्तीय खेती	जीर्णेद्धरी	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			मसाला की अंतर्वती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
7	पूर्णियाँ	आलू उत्पादन एवं मूल्य संवर्द्धन	आलू बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत केला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
8	अररिया	मूंगफली		
9	किशनगंज	अनानास	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 58500/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये

10	कटिहार	बाँस	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 14400/– रुपये
11	भागलपुर	आम (जरदालू) एवं	जीर्णोद्धार (आम बाग)	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		बागों का जीर्णोद्धार	प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (जरदालू आम)	90 प्रतिशत अधिकतम 19800/– रुपये
12	बांका	कटहल	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
13	मुंगेर	सगंधीय पौधे एवं सहजन	क्षेत्र विस्तार (सगंध पौधे	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
14	पटना	फूल एवं पपीता	क्षेत्र विस्तार (खुले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कटे फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कन्द वाले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 81000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (पपीता)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
15	नालंदा	जैविक सब्जी उत्पादन,	जैविक सब्जी उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 10000/– रुपये
		पान एवं मशरूम	क्षेत्र विस्तार (पान)	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये /200 वर्गमी.
			मशरूम	90 प्रतिशत तक राष्ट्रीय बागवानी मिशन के अनुसार
16	गया	आँवला	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
			चलन्त प्रशीतीकृत ठेला	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
17	खगड़िया	केला (टिश्यू कलचर)	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 74883/– रुपये
18	जमुई	बेल, जामुन एवं सहजन	क्षेत्र विस्तार (बेल, जामुन एवं सहजन)	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
19	औरंगाबाद	आँवला	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 21000/– रुपये
20	रोहतास	टमाटर	टमाटर बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
21	मधुबनी	पान	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये/200 वर्गमी.
22	सहरसा	बागों का जीर्णोद्धार	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
23	बेगूसराय	मिर्च	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये

24	कैमूर	जैविक सब्जी उत्पादन एवं आम	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
			जैविक सब्जी उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 10000/– रुपये
25	जहानाबाद	फूल एवं सगंध पौधे	क्षेत्र विस्तार (खुले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 21600/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कटे फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 63000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (कन्द वाले फूल)	90 प्रतिशत अधिकतम 81000/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (सगंधीय पौधे)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
26	अरवल	परवल	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
27	नवादा	पान	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये/200 वर्गमी.
28	लक्खीसराय	टमाटर	टमाटर बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
29	शेखपुरा	प्याज	प्याज बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
30	सारण	आलू बीज उत्पादन	आलू बीज उत्पादन	90 प्रतिशत अधिकतम 45000/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
31	सिवान	सगंधित एवं औषधीय पौधे	क्षेत्र विस्तार (खस)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
			क्षेत्र विस्तार (लेमन ग्रास)	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
32	गोपालगंज	पपीता	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
33	सीतामढ़ी	आम एवं मसाले की	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		अन्तर्वर्त्तीय खेती	मसाले की अन्तर्वती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
34	शिवहर	आम एवं मसाले की	जीर्णोद्धार	90 प्रतिशत अधिकतम 27000/– रुपये
		अन्तर्वर्त्तीय खेती	मसाले की अन्तर्वर्ती खेती	90 प्रतिशत अधिकतम 22500/– रुपये
35	सुपौल	मृदा सुधार		
36	मधेपुरा	मृदा सुधार		
37	भोजपुर	अमरूद	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 19755/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये
38	बक्सर	अमरूद	क्षेत्र विस्तार	90 प्रतिशत अधिकतम 19755/– रुपये
			प्रसंस्करण इकाई	90 प्रतिशत अधिकतम 135000/– रुपये